वहदते उम्मत

इख़्तिलाफ़ाते उम्मत और उनका हल

लेखक–
मुफ्ती मुहम्मद शफ़ीअ रह0

अनुवादक– डा0 रफ़ीक़ अहमद

GUIDANCE PUBISHERS & DISTRIBUTORS
New Delhi-25

मेरे बुज़ुर्गो और दोस्तो ! यह एक हक़ीक़त है और इसमें किसी बनावट का दखल नहीं कि मैं शुरू से न कभी कोई मुक़र्रिर रहा न खतीब और न ही बड़े-बड़े जलसों को सम्बोधित करने का आदी। मेरी पूरी उम्र पढ़ने-पढ़ाने में गुज़री या फिर कुछ लिखने-लिखाने में। आम मुसलमानों की ज़रूरत के मुताबिक़ रिसालों और पत्रिकाओं में लिखने का सिलसिला रहा और मेरे बुजुर्गो ने मुझसे अच्छा गुमान रखते हुये फ़तवे वगैरा का काम मेरे हवाले कर दिया। इस तरह मेरी उम्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा इसमें व्यतीत हुआ।

हमारे मुहतरम हकीम अब्दुर्रशीद अशरफ़ साहब ने अपने हुस्नेज़न और मुहब्बत से मुझे यहां लाकर बिठा दिया और जो उनवान (शीर्षक) मुझे गुफ्तगू के लिये सुपुर्द किया, वह जिस तरह अपनी हक़ीक़त के एतिबार से ऐसा यक़ीनी और स्पष्ट है कि इसमें दो रायें होने की कोई गुंजाइश नहीं। इसी तरह हमारे समाज में इसका वजूद ऐसा कमयाब है कि अपने समाज को देखते हुये इस विषय पर ज़बान खोलने की हिम्मत नहीं होती। मुझे विषय यह दिया गया है कि उम्मते मुस्लिमा एक नाकाबिले तक़सीम इकाई है। यह बात अपनी जगह बिलकुल सही और नाक़ाबिले इन्कार हक़ीक़त ज़रूर है, मगर हमारे हालात व वाक़िआत दुनिया को इसके विपरीत यह बतला रहे हैं कि यह उम्मत मुत्तहिद (एकजुट) न होने वाला एक समूह है। अपने हालात और परिस्थतियों

को नज़र अंदाज करके मसलो के दलीलों पर बहस मात्र एक (फ़लसफ़ा) दर्शन है, जिससे हमारी कोई ज़रूरत पूरी नहीं होती। इसलिए मुझे इस मसले के सकारात्मक पहलू पर कुछ बोलने से ज़्यादा उसके नकारात्मक पहलू, फ़िरक़ाबन्दी, बिखराव और उसके असबाब पर विचार और उसके इलाज की फ़िक्र करना है।

जहां तक इस्लाम की दावते इत्तेहाद और सारी दुनिया के मुसलमानों को बल्कि सारी मानव जाति को एक कौम, एक परिवार और एक बिरादरी क़रार देने का मामला है, वह कोई ऐसी चीज़ नहीं जो किसी मुसलमान से छुपी हो। क़ुरआन करीम के स्पष्ट शब्दों में ''कि आदम की सन्तान को एक जान से पैदा किया और मुसलमानों को एक बिरादरी क़रार दिया गया।

आखरी हज :–

अन्तिम हज के अन्तिम भाषण में रसूल करीम सल्ल० ने जो उस वक्त के मुसलमानों के सबसे बड़े सम्मेलन में दिशा–निर्देश दिये थे, उनमें इस बात को बड़ी अहमीयत से ज़िक्र फ़रमाया कि ''इस्लाम में काले–गोरे, अरबी–ग़ैर–अरबी का कोई फ़र्क नहीं। सब एक माता–पिता की संतान है''। इस कथन के ज़रीये ज़ाहिलाना इत्तिहाद जो नस्ल और खानदान की बुनियाद पर या वतन, रंग और

भाषा की बुनियाद पर लोगों ने क़ाइम कर ली थी, उन सबके बुतों को तोड़कर सिर्फ़ ख़ुदा परस्ती और दीन की वहदत (एकत्व) को काइम किया।

यही वह वास्तविक एकता है जो पूरब और पश्चिम के तमाम आदम की सारी संतान और सारे इन्सानों को मुत्तहिद और एकजुट करके एक क़ौम और एक बिरादरी बना सकती है और कोशिश और अमल के ज़रिये हासिल की जा सकती है। नस्ल और वतन या रंग और भाषा की बुनियाद पर जो वहदतें अज्ञान काल में लोगों ने स्थापित कर लीं और आज के बनावटी रोशन ख्याली के दौर में फिर उन्हीं की पूजा की जा रही है। इन वहदतों की बुनियाद पर ही इन्सानों के सारे तबकों में बिखराव है और बिखराव भी ऐसा जिसको किसी तरह भी मिटाया नहीं जा सकता। जो काला है वह गोरा नहीं बन सकता, जो नसब में सैयद या शेख नहीं वह किसी अमल और कोशिश से शेख या सैयद नहीं बन सकता।

इस्लाम ने एक ऐसी वहदत (एकत्व) की तरफ़ दावत दी जिसमें सारे इन्सान बिना किसी दिक्कत और परेशानी के शरीक हो सकते हैं और यह वहदत और एकता चूंकि एक मालिके हक़ीक़ी जिसका कोई शरीक नही से सम्बंधित और उसकी प्रचार-प्रसार से वाबस्ता है, इसलिए निसन्देह नाक़ाबिले तक़सीम है।

जो विषय इस मजलिस में मुझे दिया गया है उसके सकारात्मक पहलू पर तो इतनी गुज़ारिश भी काफ़ी समझता हूँ। मगर अब यह देखता हूँ कि यह एक अक़ीदा और विचारधारा है जो ज़बानों पर जारी और किताबों में लिखा हुआ है, लेकिन जब अपने इर्द-गिर्द ही नहीं बल्कि पूरब और पश्चिम के इन्सानों के हालात का जाइज़ा लिया जाये तो इसके विपरीत यह महसूस होने लगता है कि इस मिल्लत में बिखराव है जिसके एकता और इत्तिहाद की सम्भावना दूर-दूर नज़र तक नहीं आती। वह मिल्लत जिसने दुनिया के सारे इन्सानों को एक खुदा की इताअत और आज्ञापालन पर एकत्र करके एक बिरादरी बनाने की दावत दी थी। ''ऐ लोगों अपने रब से डरो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया'' (सूरह निसा) और फिर लगातार दावत और ग़ौर व फिक्र के बावजूद लोग इस बिरादरी से कट गये, उनको एक अलग क़ौम क़रार देकर अल्लाह तआला के मानने वालों को बाक़ायदा एक क़ौम, एक मिल्लत और एक बिरादरी बनाकर शीशा पिलाई हुई ठोस दीवार बनाया था, आज वह मिल्लत ही तरह-तरह की फ़िरक़ा बन्दियों में मुब्तेला, एक दूसरे से बेज़ार और लड़ती-झगड़ती नज़र आती है। इसमें सियासी पार्टियों के झगड़े, बिरादरियों का टकराव, कारोबार और व्यवसाओं का बटवारा और अमीर व ग़रीब का फ़र्क

तो नफ़रत की बुनियाद थी ही ज़्यादा अफ़सोस इसका है कि दीन और खुदा परस्ती जो कि ग़ैरों को अपना बनाने और नसवी, नसली, वतनी और भाषायी झगडों को मिटाने ही का गुणकारी नुस्खा था, आज वह भी हमारे लिए झगड़ा व फ़साद और शत्रुता एवं कटुता का ज़रीआ बन गया, जिसने पूरी मिल्लत को दीनी व दुनयवी हर एतिबार से तबाही के गढ्ढे में धकेल दिया और उससे बचने का कोई तरीका नज़र नही आ रहा। हमारी हर जमाअत व तनज़ीम तफ़रीक और हर इज्तिमा फ़िरक़ाबन्दी का सामान उपलब्ध कराता है और यही वह रोग है जिसने मिल्लते इस्लामिया को इस अज़ीमुश्शान अक़सरीयत के बावजूद पसमान्दा (Back word) बनाया हुआ है। हर क़ौम हमें अपने में मिला लेने की इच्छुक है। मुसलमानों की ज़िन्दगी के हर विभाग पर अक़ीदे से लेकर आमाल व अखलाक तक संस्कृति और सभ्यता से लेकर मामलात और अर्थव्यवस्था तक हर क़ौम का हमला है। एक तरफ़ हुकूमत व इक्तिदार और अर्थव्यवस्था और व्यापार में उनकी ज़िन्दगी तंग की जा रही है तो दूसरी तरफ नास्तिकता के फ़रेब के ज़रीये उनके अक़ीदों और आस्थाओं को कमज़ोर और उनकी खुदा परस्ती के उसूल को नई तालीम व तहज़ीब और खैर ख्वाही और हमदर्दी के नाम पर नफ़्स परस्ती (काम-लोलुपता) में तबदील किया जा रहा है।

हमारी अवाम अंग्रेज़ के डेढ़ सौ साल दौरे हुकूमत में अनेक उपायों के ज़रिये दीनी इल्म से वंचित और हक़ीक़तों से नावाकिफ कर दी गयी। अब घर की दौलते इल्म व फिक्र गवां कर जो कुछ दूसरों की तरफ़ से आता है, उसी को हम कीमती सरमाया और पूंजी समझने लगे। खासतौर से जबकि इस तालीम व तहज़ीब की छाया में नफ़्स की बेलगाम इच्छाओं और ऐश व इशरत का मैदान भी खुला नज़र आता है, और हमारे आलिम और मौलवी अपने आंशिक और छोटे-छोटे मतभेदों और बहुत से ऐसे ग़ैर ज़रूरी मसलों में ऐसे उलझ गये कि उनको इस्लाम की सीमाओं पर होने वाले हमले की बिलकुल ख़बर ही नहीं।

बीमारी का सबब और उसका इलाज :-

आज के इस जलसे में मिल्लत का दर्द रखने वाले ओलमा, विद्वान और विचारक नज़र आ रहे हैं, दिल चाहता है, मिल्लत के इस मर्ज़ के असबाब और उसके इलाज पर कुछ विचार किया जायेः

अमीर जमा हैं अहबाब दर्दे दिल कह ले
फिर इल्तिफ़ाते दिले दोस्ताँ रहे न रहे

सबसे पहले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि नज़री मसायल में रायों का इख़्तिलाफ़ न नुक़सानदेह है न इसके मिटाने की ज़रूरत है, न मिटाया जा सकता है। राय

का इख़्तिलाफ़ न उम्मत के इत्तेहाद के विपरीत है और न किसी के लिए नुकसानदेह, इख़्तिलाफ़े राय एक फ़ितरी और स्वाभाविक मामला है जिससे न कभी इंसानों का कोई गिरोह ख़ाली रहा और न रह सकता है। किसी क़ौम व समुदाय में हर काम और हर बात में पूरी-पूरी सहमति सिर्फ़ दो हालतों में हो सकती है, एक यह कि उनमें कोई सूझ-बूझ वाला इंसान न हो जो मामले पर ग़ौर करके कोई राय क़ायम करने की योग्यता रखता हो, इसलिए ऐसे समूह में एक व्यक्ति कोई बात कह दे तो दूसरे सब उस पर इसलिए सहमत हो सकते हैं कि उनके पास कोई राय और सूझ-बूझ ही नहीं। दूसरे इस स्थिति में पूर्ण सहमति हो सकती है कि समूह के लोग अवसरवादी और बदनियत हों कि एक बात को ग़लत और नुकसानदेह जानते हुये मात्र दूसरों की मुरव्वत में इख़्तिलाफ़ का इज़हार न करें।

और जहां अक़्ल भी हो और ईमानदारी भी, यह मुमकिन नहीं कि उनमें इख़्तिलाफ़े राय न हो। इससे मालूम हुआ कि राय का इख़्तिलाफ़ अक़्ल और ईमानदारी से पैदा होता है। इसलिए इसको अपने आप में बुरा नहीं कहा जा सकता। और अगर हालात व मामलात का सहीह जायज़ा लिया जाये तो इख़्तिलाफ़े राय अगर अपनी सीमाओं के अंदर है तो वह कभी किसी क़ौम व समुदाय के लिए

नुकसानदे नहीं होता बल्कि बहुत से लाभकारी नतीजे प्रदान करता है। इस्लाम में राये मशविरा का सम्मान और उस पर ज़ोर देने का यही मक़सद है कि मामले से सम्बन्धित मुखतलिफ़ पहलू और मुख़तलिफ़ रायें सामने आ जायें तो फ़ैसला अकलमंदी के साथ किया जा सकता है। अगर इख़्तिलाफ़े राये को ग़लत समझा जाये तो सलाह मशविरे का फ़ायदा ही ख़त्म हो जाता है।

सहाबा व ताबईन रज़ि० में इख़्तिलाफ़े राय और उसका दर्जा :–

इन्तिज़ामी और तज्रबाती मामलों में तो इख़्तिलाफ़े राय ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मुबारक दौर में और आप सल्ल० की मजलिसों में भी होता रहा और चारों खलीफ़ाओं और आ़म सहाबा-ए-किराम रज़ि० के दौर में और इन्तेज़ामी मामलों के एलावा जब नये-नये हालात और शरई मसले सामने आये जिनका क़ुरआन व हदीस में स्पष्टरूप से ज़िक्र न था या क़ुरआन की एक आयत का दूसरी आयत से या एक हदीस का दूसरी हदीस से ज़ाहिरी तौर पर टकराव नज़र आया और उनको क़ुरआन व सुन्नत के एहकाम में ग़ौर करके टकराव को दूर करने और शरई मसलों के हल में अपनी राय और क़ियास से काम लेना पड़ा तो उनमें इख्तिलाफ़े राय हुआ, जिसका होना अक़्ल व ईमानदारी की बिना पर ज़रूरी था।

अज़ान और नमाज़ जैसी इबादतें जो दिन में पांच बार मीनारों और मस्जिदों में अदा की जाती हैं, उनमें भी

आंशिक मामलों में इस नाम की पवित्र जमाअत के लोगों का खास इख्तिलाफ़ नज़र आता है, और उसके इख्तिलाफे राय पर आपसी ज़ोरदार बहस व मुबाहसा में भी कोई कमी नज़र नहीं आती। ऐसे ही गैर मन्सूस (वह मसले जो क़ुरआन व सुन्नत से साबित न हों) या अस्पष्ट मामलात, हलाल व हराम, जाइज़ व नाजाइज़ में भी सहाब-ए-करा़म की रायों का इख़्तिलाफ़ कोई ढकी-छुपी चीज़ नहीं। फिर सहाबा -ए-करा़म सल्ल० के शागिर्द ताबिईन हज़रात का यह अमल भी हर पढ़े-लिखे को मालूम है कि उनमें से कोई जमाअत किसी सहाबी की राय को इख़्तियार कर लेती थी और उनके मुक़ाबिल दूसरी जमाअत दूसरे सहाबी की राय पर अमल करती थी, लेकिन सहाबा-ए-करा़म या ताबिईन के उस बेहतरीन दौर में या उसके बाद इमामों और उनके मानने वालों में कहीं एक वाकिया भी ऐसा सुनने में नहीं आया कि एक दूसरे को गुमराह या फ़ासिक़ कहते रहे हों, या कोई मुखालिफ़ फ़िरका और जमाअत समझकर एक दूसरे के पीछे नमाज़ पढ़ने से रोकते रहे हों, या कोई मस्जिद में आने वाला लोगों से पूछ रहा हो कि यहां के इमाम और नमाज़ियों की अज़ान व अक़ामत इमाम के पीछे सूरह फातिहा पढ़ने और रफ़यदैन वग़ैरा में क्या मसलक है। इन इख्तिलाफ़ात की बिना पर एक दसूरे के ख़िलाफ झगड़ा व फ़साद या गाली गलोज, तौहीन व हसीं-मज़ाक और फ़िरक़ाबन्दी का तो उन पवित्र ज़मानों में कोई तसव्वुर ही न था।

इमाम इब्ने अब्दुल अलक़ुर्तबी ने अपनी किताब

''जामेअ बयानुल इल्म'' में बुज़ुर्गों के आपसी इख्तिलाफ़ात का हाल इन शब्दों में बयान किया है, ''यहया बिन सईद फ़रमाते हैं कि हमेशा अहले फ़तवा फ़तवे देते रहे। एक शख्स ग़ैर मन्सूस इहक़ाम में एक चीज़ को हलाल क़रार देता है, दूसरा हराम कहता है, मगर न हराम कहने वाला यह समझता है कि जिसने हलाल होने का फ़तवा दिया वह हलाक और गुमराह हो गया, और न हलाल कहने वाला यह समझता है कि जिसने हराम होने का फ़तवा दिया वह हलाक और गुमराह हो गया।

इसी किताब में ज़िक्र है कि हज़रत उसामा बिन ज़ैद ने मदीना के मशहूर फ़कीह (विधि-विशेषज्ञ) हज़रत क़ासिम बिन मुहम्मद रह० ने एक इख्तिलाफ़ी मसले के मुताल्लिक पूछा तो उन्होंने फ़रमाया कि उन दोनों रायों में से आप जिस पर अमल करलें काफी है, क्योंकि दोनों तरफ़ सहाबा-ए-कराम की एक जमाअत का उसवा (जामेअ बयानुल इल्म) मौजूद है।

एक शुब्हा और उसका जवाब :-

यहां उसूलेदीन और इख्तिलाफ़ की वजहों से नावाक़िफ़ लोगों को यह सन्देह हो सकता है कि यह कैसे हो सकता है कि इस्लामी शरीअत में एक चीज़ हलाल हो और हराम भी हो, जाइज़ भी हो और नाजाइज़ भी हो, ज़ाहिर है कि इन दोनों में एक ग़लत और एक सही होगा, फिर दोनों

रायों का बराबर से सम्मान कैसे बाक़ी रह सकता है ? जिसको एक आदमी ग़लत समझता है उसको ग़लत कहना पूरी ईमानदारी है।

जवाब यह है कि कलामे मुतलक़ पूरे तौर से हलाल व हराम और जाइज़ व नाजाइज़ में नहीं, क्योंकि क़ुरआन व सुन्नत के आदेशों और व्याख्याओं की दृष्टि से कुछ चीज़ें स्पष्ट तौर पर हराम हैं, जैसे सूद, शराब, जुआ, रिश्वत वग़ैरा। इनमें दो रायें नहीं हो सकती और न बुज़ुर्गाने दीन का इनमें कहीं इख्तिलाफ़ हो सकता था? और इनमें इख्तिलाफ़ करना तो दीन की दलीलों और स्पष्ट आदेशों का इन्कार करना तो पूरी उम्मत के नज़दीक गुमरही और कुफ्र है और जो ऐसा करे उससे बेज़ारी और बराअत का एलान करना ईमान का ठीक तक़ाज़ा है। इसमें रवादारी (उदारता) मना है।

यह उदारता की नसीहत और इख्तिलाफ़े राय के बावजूद अपने मुख़ालिफ़ की राय का सम्मान सिर्फ़ ऐसे मसलों में से है जो या तो क़ुरआन व सुन्नत में स्पष्ट रूप से ज़िक्र नहीं हैं, या ज़िक्र तो है इतना संक्षिप्त रूप में है कि उनकी तशरीह व तफ़सीर के बग़ैर उन पर अमल नहीं हो सकता था या दो रिवायतों में ज़ाहिरी तौर पर कुछ टकराव नज़र आता है। इन सभी हालतों में मुजतहिद आलिम को क़ुरआन व सुन्नत और सहाबा–ए– कराम के फेल व अमल में ग़ौर व फ़िक्र करके यह फ़ैसला करना पड़ता है कि उसका

मक़सद और मतलब क्या है और उससे क्या आदेश मिलते हैं? इस सूरत में मुम्किन है कि एक मुजतहिद इज्तिहाद (जहां क़ुरआन और हदीस का आदेश साफ न हो वहां अपनी राय से उचित रास्ता निकालना) के उसूल के अनुसार क़ुरआन व सुन्नत और सहाबा के अमल वग़ैरा में ग़ौर करने के बाद इस नतीजे पर पहुँचे कि फ़लां काम जाइज़ है और दूसरा मुजतहिद इन्हीं उसूलों में पूरा ग़ौर व फ़िक्र करके उसके नाजाइज़ होने को सही समझे। ऐसी सूरत में यह दोनों अल्लाह के नज़दीक अज्र व सवाब के मुस्तहक़ हैं, किसी पर कोई गुनाह नहीं। जिसकी राय अल्लाह तआला के नज़दीक सही है उसको दुहरा अज्र व सवाब और जिसकी सही नहीं उसको भी एक अज्र मिलेगा। इसी से कुछ ओलमा को यह ख्याल पैदा हुआ कि इज्तेहादी इख्तिलाफ़ात में दोनों एक दूसरे के विपरीत कौल हक़ और सही होते हैं। इसकी वजेह यह है कि अल्लाह ताला का मक़सद बन्दों की इताअत का इम्तेहान है। जब दोनों ने अपने-अपने ग़ौर व फ़िक्र और इज्तिहादी क़ूव्वत को शर्तो के साथ लगा कर खर्च ली तो दोनों अपना फर्ज़ अदा कर चुके। दोनों सही जवाब हैं, मगर उम्मत के ओलमा और इमामों की तहक़ीक़ यही है कि अल्लाह तआला के इल्म में तो उन दोनों में से कोई एक हक़ और सही होता है, तो जो लोग अपने इज्तेहाद से इस हक़ को पालें वह हर हैसीयत से

कामयाब और दोहरे अज्र व सवाब के मुस्तहिक (पात्र) हैं, और जो पूरी कोशिश के बावजूद इस हक़ तक न पहुँचे तो भी अज्र के हक़दार हैं, उन पर कोई मलामत (फटकार) नहीं, बल्कि उनकी कोशिशों का एक अज्र उनको भी मिलता है।

एक अहम वाकिया, अहम बिन्दु :–

एक अहेम वाक़िया भी आपको बता दूँ जो बहुत अहम भी है और नसीहत वाला भी। क़ादियान में प्रत्येक वर्ष हमारा जलसा हुआ करता था और सय्यदी हज़रत मौलाना सै० मुहम्मद अनवर शाह कश्मीरी रह० उसमें शिर्कत किया करते थे। एक साल उसी जलसे में तशरीफ लाये मैं भी आपके साथ था। एक सुबह नमाज़े फज्र के वक्त अन्धेरे में हाज़िर हुआ तो देखा कि हज़रत सर पकड़े हुये बहुत उदास बैठे हैं। मैंने पूछा हज़रत कैसी तबीयत है ? कहा हाँ, ठीक हूँ, मियां हाल क्या पूछते हो, उम्र बर्बाद कर दी।

मैंने अर्ज़ किया हज़रत ! आपकी सारी उम्र इल्म की ख़िदमत में, दीन के प्रचार और तबलीग में गुज़री है, हज़ारों ओलमा आपके शिष्य हैं, मशाहीर हैं, जिन्होंने आपसे फायदा उठाया और ख़िदमते दीन में लगे हुये हैं, आपकी उम्र अगर बर्बाद हुई तो फिर किस की उम्र काम में लगी ? फ़रमाया मैं तुम्हें सही कहता हूँ, उम्र बर्बाद कर दी।

मैंने अर्ज़ किया, हज़रत बात क्या है ?

फ़रमाया ! हमारी उम्र का, हमारी तक़रीरों का, हमारी सारी कोशिशों का खुलासा यह रहा है कि दूसरे मसलकों पर हनफ़ी मसलक की प्रधानता क़ायम कर दें, इमाम अबू हनीफ़ा रह. के मसायल की दलीलें तलाश करें। यह रहा है मक़सद हमारी कोशिशों का, तक़रीरों का और इल्मी ज़िन्दगी का।

अब ग़ौर करता हूँ तो देखता हूँ कि किस चीज़ में उम्र बर्बाद की ? अबू हनीफ़ा रह० हमारी तर्जीह और प्रधानता के मुहताज हैं कि हम उन पर कोई एहसान करें ? उन्हें अल्लाह तआला ने जो मुक़ाम दिया है वह मुक़ाम लोगों से खुद अपना लोहा मनवायेगा, वह हमारे मुहताज नहीं। और इमाम शाफिई रह० मुहम्मद बिन हम्बल रह० और दूसरे मसलकों के फुक़हा और ओलमा जिनके मुक़ाबले हम यह तर्जीह क़ायम करते आये हैं, क्या हासिल है इसका? इसके सिवा कुछ नहीं कि तुम ज़्यादा से ज़्यादा अपने मसलक को सवाब मुहतमिलुल ख़ता (सही मसलक जिसमें गलती की सम्भावना मौजूद है) साबित कर दें और दूसरे के मसलक को खता मुहतलिुस्सवाब (ग़लत मसलक जिसके हक़ होने की सम्भावना मौजूद है) कहें। इसके आगे कोई नतीजा नहीं उन सारी बहसों का दलीलों और तहक़ीक़ात का जिनमें हम लगे हुये हैं।

फिर फ़रमाया ! अरे मियां ! इसका तो कहीं हश्र में भी राज़ नहीं खुलेगा कि कौन सा मसलक सही था और कौन सा ग़लत। इज्तिहादी मसायल (वह मसायल जिनके बारे में क़ुरआन व सुन्नत से कोई स्पष्ट आदेश न मालूम हो सके) सिर्फ यही नहीं कि दुनिया में उनका फैसला नहीं हो सकता, दुनिया में भी हम सारी तहक़ीक और कोशिश के बाद यही कह सकते हैं कि यह भी सही और यह कि यह सही है लेकिन सम्भावना मौजूद है कि यह ग़लत हो या वह ग़लत है। इस सम्भावना के साथ कि सही हो। दुनिया में तो यह है ही क़ब्र में भी मुनकर नकीर नहीं पूछेंगे कि नमाज़ में रफ़यदैन (नमाज में दोनों हाथ बार-बार उठाना) सही था या रफ़यदैन न करना सही था? सूरह फ़ातिहा के बाद ज़ोर से आमीन कहना सही था या धीरे से कहना सही था? आखिरत में भी इसके ताल्लुक़ से सवाल नहीं किया जायेगा और क़ब्र में भी यह सवाल नहीं होगा। हज़रत शाह साहब रह० के अल्फ़ाज़ यह थे कि अल्लाह तआला शाफ़िई को रुसवा करेगा न अबू हनीफ़ा को न मालिक को न अहमद बिन हम्बल को जिनको अल्लाह तआला ने अपने दीन के इल्म से नवाज़ा है, जिनके साथ इन्सानों की बहुत बड़ी तादाद को लगा दिया है जिन्होंने हिदायत की रोशनी चारों तरफ़ फैलायी है, जिनकी ज़िन्दगियां सुन्नत का नूर फैलाने में गुज़र गयीं, अल्लाह तआला उनमें से किसी को रुसवा

नहीं करेगा कि वहां मैदाने हश्र में खड़ा करके यह मालूम करे कि अबू हनीफ़ा ने सही कहा था या साफिई ने ग़लत कहा था, या इसके विपरीत, यह नहीं होगा।

तो जिस चीज़ को न दुनिया में कहीं खुलना है, न बरज़ख में और न हश्र में, उस के पीछे पड़कर हमने अपनी उम्र बर्बाद कर दी, अपनी कूव्वत व ताकत लगा दी और जो सही इस्लाम की दावत थी और सभी ओलमा के दरम्यान जो मसले सामान्य थे, और दीन की जो ज़रूरतें सभी के नज़दीक महत्वपूर्ण थीं, जिनकी दावत अम्बिया अलै० लेकर आये थे, जिनकी दावत को आम करने का हमें हुक्म दिया गया था, और वह बुराईया जिनको मिटाने की कोशिश हम पर फर्ज़ की गयी, आज वह दावत तो नहीं दी जा रही। यह ज़रूरयाते दीन तो लोगों की निगाहों से ओझल हो रही हैं और अपने और पराये उनके चेहरे को बिगाड़ रहे हैं, और वह बुराइयां जिनको मिटाने में हमें लगे होना चाहिये था, वह फैल रही हैं, गुमरही फैल रही है, कुफ्र फैल रहा है, शिर्क व बुतपरस्ती चली आ रही है, हराम व हलाल का फ़र्क मिटता जा रहा है, लेकिन हम लगे हुये हैं इन फुरूई और ग़ैर बुनियादी बहसों में। हज़रत शाह साहब ने फ़रमाया ! इसलिये गमगीन बैठा हूँ और महसूस कर रहा हूँ कि उम्र बर्बाद कर दी।

बुज़ुर्गाने दीन में इख़्तिलाफ़ हो तो लोगों को क्या करना चाहिए ?

ऐसे ही इख़्तिलाफ़ के सम्बंध से जिसमें सहाबा-ए-कराम की अलग-अलग राये हों, इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह० ने फ़रमाया ''एक दूसरे के विपरीत कथनों में से एक ग़लत है, मगर उस ग़लती को माफ़ कर दिया गया है'' (जामेअ बयानुल इल्म, इब्ने अब्दुल बर पेज नं. 83 जिल्द-2)

और इमाम मालिक रह० से सहाबा-ए-कराम के आपसी इख़्तिलाफ़ात से सम्बन्धित सवाल किया गया तो उन्होंने फ़रमाया ''इनमें कुछ ग़लत है, कुछ सही, तो अमल करने वाले इज्तिहाद करने वालों को ग़ौर करके किसी को मान लेना चाहिये (जामेअ बयानुल इल्म) करना चाहिये'' इमाम मालिक रह० ने अपने इस इर्शाद में जिस तरह यह स्पष्ट कर दिया कि इज्तिहादी इख़्तिलाफ में एक ओर सही और दूसरी ओर गलती होती है, दोनों (एक दूसरे के विपरीत) चीज़ें सही नहीं होती, इसी तरह यह भी इर्शाद फ़रमाया कि इस इख़्तिलाफ़ में आपसी झगड़ा और फ़साद जाइज नहीं। सिर्फ इतना काफ़ी है कि वह जिसको ग़लती पर समझता है उसको नर्मी और भले अन्दाज़ से ग़लती से बाखबर कर दे। फिर वह क़ुबूल कर ले तो बेहतर वरना खामोशी इख़्तियार करे, लड़ाई-झगड़ा या बुरा-भला मत कहे।

''हज़रत इमाम मालिक रह० ने फ़रमाया कि इल्म में झगड़ा और फ़साद इल्म की रोशनी को दिल से निकाल देता है, किसी ने अर्ज़ किया कि एक व्यक्ति जिसको सुन्नत का इल्म हासिल है, क्या वह सुन्नत की हिफाज़त के लिये झगड़ा कर सकता है? फ़रमाया कि नहीं ! बल्कि उसको चाहिये कि सामने वाले को सही बात से बाखबर कर दे, फिर वह क़ुबूल कर ले तो बेहतर है वरना खामोशी इख्तियार करे। टकराव और इख्तिलाफ़ से बचे'' (औजिजुल मसाम शरह मुअत्ता लिमालिक, सफा 15 जिल्द 1, मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान)

मुहम्मद बिन अब्दुर्-रहमान सैरफ़ी रह० ने हज़रत इमाम अहमद बिन हम्बल रह० से सवाल किया कि जब किसी मसले में सहाबा-ए-कराम का आपस में इख्तिलाफ़ हो तो क्या हमारे लिये यह जाइज़ है कि हम क़ुछ में ग़ौर व फ़िक्र करके यह फ़ैसला करें कि इनमें सही किसका क़ौल है? तो उन्होंने फ़रमाया--

''रसूलुल्लाह सल्ल० के सहाबा-ए-कराम के इख्तिलाफ़ में लोगों को ग़ौर व फिक्र ही न करना चाहिए'' सैरफ़ी रह० ने कहा कि फिर अमल किसके क़ौल पर और किस तरह करें ? तो इमाम साहब ने फ़रमाया ''उनमें से जिसका जी चाहे पैरवी कर लो, यही काफ़ी है'' (जामेअ बयानुल इल्म, पेज-83 जिल्द 3)

इमामों के इन कथनों में अबू हनीफ़ा रह० और इमाम मालिक रह० का मसलक तो यह हुआ कि जब सहाबा-ए-कराम रज़ि० का आपस में किसी मसले में इख्तिलाफ़ हो तो बाद के फ़क़ीहों और ओलमा को चाहिये कि दलीलों में ग़ौर करके जिसका क़ौल सुन्नत से ज़्यादा करीबतर समझें उसको इख्तियार कर लें और इमाम अहमद रह० के नज़दीक उसकी भी ज़रूरत नहीं है, दोनों तरफ़ जब सहाबा रह० हैं तो जिसका क़ौल चाहे इख़्तियार कर सकते हैं।

हज़रत उबई बिन काब रह० और अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० में एक मसले में आपस में इख़्तिलाफ़ हो रहा था हज़रत फ़ारूके आज़म रज़ि० ने सुना तो गुस्से में बाहर तशरीफ लाये और कहा कि ''अफ़सोस ! रसूलुल्लाह सल्ल० के सहाबियों में ऐसे दो शख्स आपस में झगड़ रहे हैं जिनकी तरफ़ लोगों की नज़रे हैं और जिनसे लोग दीनी मसलों में फ़ायदा उठाते हैं'' फिर उन दोनों के इख्तिलाफ़ात का फ़ैसला इस तरह फ़रमाया कि सही बात तो उबई बिन काब रज़ि० की है मगर इज्तिहाद में कोताही इब्ने मसऊद रज़ि० ने भी नहीं की'' फिर फ़रमाया कि ''मगर मैं आइन्दा ऐसे मसलों में झगड़ा करता हुआ किसी को न देखूं, वरना सज़ा दूगां''

हज़रत फ़ारूके आज़म रज़ि० के इन फ़रमान से एक तो यह बात साबित हुई कि इज्तिहादी मसायल व

इख्तिलाफ़ात में एक क़ौल सही होता है, और दूसरा अगर्च सही नहीं मगर मलामत और फटकार उस पर भी नहीं की जा सकती। दूसरी बात यह मालूम हुई कि ऐसे इज्तिहादी मसलों (क़ुरआन व हदीस और इजमा पर क़यास करके शरई मसले निकालना) में इख्तिलाफ़ पर ज़्यादा ज़ोर देना ओलमा के समर्थकों के लिये मुनासिब नहीं। जिसमें एक दूसरे पर मलामत या फ़ितना व फ़साद के ख़तरात पैदा हो जायें।

इमाम शाफ़ई रह० की एक स्पष्ट गुफ्तगू को नक़ल करके इब्ने अब्दुल बर ने फ़रमाया कि इमाम शाफ़ई के इस कलाम में इसकी दलील मौजूद है कि मुजतहदीन (किताब व सुन्नत से शरई मसायल निकालने वाले) को आपस में एक दूसरे की ग़लतियां नहीं पकड़नी चाहिये।

यानी उनमें कोई एक दूसरे को यह न कहे कि आप ग़लती और ख़ता पर हैं, वज़ह यह है कि ऐसे इज्तिहादी मसलों में किसी को यह हक़ नहीं पहुँचता कि अपने क़ौल को यक़ीनी तौर पर सही और दूसरे के क़ौल को यक़ीनी तौर पर ग़लत कहे, इज्तिहाद और पूरे ग़ौर व फिक्र के बाद और जो राय काम की हो उसके सम्बंध से इससे ज़्यादा कहने का किसी को हक़ नहीं कि राय सही है, मगर सम्भावना ग़लती की भी है और हो सकता है कि दूसरे का क़ौल ही सही हो। ख़ुलासा यह कि इज्तिहादी इख्तिलाफ़ात

में अकसर ओलमा के नज़दीक इल्मे इलाही के लिहाज़ से दो मुख्तलिफ रायों में से हक़ तो कोई एक ही होता है, मगर उसका निर्धारण करना कि उनमें से हक़ क्या है, उसका यकीनी ज़रीया किसी के पास नहीं, दोनों तरफ ग़लती और सही का इमकान मौजूद है। मुज़तहिद (किताब व सुन्नत से दीनी मसायल निकालने वाला) अपने ग़ौर व फ़िक्र से किसी एक जानिब को राजेह और बेहतर क़रार देकर अमल के लिये इख़्तियार कर लेता है।

एक अहम बात :–

महान इस्लामी विद्वान....

हज़रत मौलाना सै० मुहम्मद अनवर शाह कश्मीरी रह० ने एक बार फ़रमाया कि इज्तिहादी मसायल और उनके इख्तिलाफ़ात जिनमें हम और आम ओलमा उलझते रहते हैं और इल्म का पूरा ज़ोर इस पर लगाते हैं, उनमें से सही व ग़लत का फ़ैसला दुनिया में तो क्या होगा, मेरा ख्याल तो यह है कि आखिरत में भी इसका एलान नहीं होगा। क्योंकि रब्बे करीम ने जब दुनिया में किसी इमामे मुज्तहिद को बावजूद गलत होने के एक अज्र व सवाब से नवाज़ा है और उनकी ग़लत पर पर्दा डाला है तो उस सबसे बड़े रहीम की रहमत से नामुम्किन है कि वह आखिरत में अपने उन मक़बूल बन्दों में से किसी की खता का एलान करके उसको रुसवा करे।

इसका हासिल यह है कि जिन मसायल में सहाबा-ए-कराम रज़ि० और इमामों का नज़री इख्तिलाफ़ हुआ है उनका क़तई फ़ैसला न यहां होगा न आख़िरत में, क्यों कि अमल करने वालों के लिये उनमें से हर एक की राय पर अपनी प्राथमिकता के अनुसार अमल कर लेना जाइज क़रार दे दिया गया है। और जिसने उसके मुताबिक़ अमल कर लिया वह फ़र्ज़ से फ़ारिग हो गया। उसको बइज़्माये उम्मत तारिके फर्ज़ नहीं कहा जा सकता। इन मसायल में कोई आलिम कितनी ही तहक़ीक़ और खोज-बीन करे, यह मुम्किन नहीं है कि उसकी तहक़ीक़ को यक़ीनी हक़ और दुरूस्त कहा जाये और उसके मुक़ाबिल को झूठ और ग़लत क़रार दिया जाये। इमामे हदीस हाफिज़ शम्सुद्दीन ज़हबी रह० ने फ़रमाया है कि जिस मसले में सहाबा रज़ि० व उनके शागिर्दो का इख्तिलाफ़ हो गया वह इख्तिलाफ़ क़ियामत तक मिटाया नहीं जा सकता, क्योंकि उसको मिटाने की एक सूरत है कि उनमें से एक जमाअत को यक़ीनी तौर पर हक़ पर और दूसरी जमाअत को यक़ीनी तौर पर बातिल और ग़लत क़रार दिया जाये और यह मुम्किन नहीं है।

इमामों के इख्तिलाफ़ में किसी ओर मुनकर (बुराई) नहीं होताः-

उपरोक्त व्याख्या से यह भी मालूम हो गया कि जिस

मसले में सहाबा रज़ि० व ताबिईन और इमामों का इख्तिलाफ़ हो, उसकी कोई जानिब शरई हैसीयत से मुनकर नहीं कहलायेगी, क्योंकि दोनों रायों की बुनियाद क़ुरआन व सुन्नत और उनके तस्लीमशुदा उसूलों पर है। इसलिए दोनों तरफ़ मारूफ़ (अच्छाई) हैं, ज़्यादा से ज़्यादा एक को राजेह (बेहतर) दूसरे को मरजूह (कमबेहतर) कहा जा सकता है। इसलिए उन मसायल में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर (नेकी की ओर बुलाना फिर बुराई से रोकना) का फ़रीज़ा भी किसी पर आयद नहीं होता, बल्कि ग़ैर मुनकर पर (जो बुरा न हो) नकीर करना ख़ुद एक मुन्कर (बुराई) है। यही वजह है कि बुज़ुर्गों के अनगिनत मसायल में जायज़ व नाजायज़ और हराम व हलाल के इख्तिलाफ़ होने के बावजूद कहीं बयान नहीं कि उनमें से एक फ़रीक़ दूसरे पर इस तरह एतेराज करता जैसे मुनकरात (बुराईयों) पर की जाती है, या एक फ़रीक़ दूसरे को या उसके मानने वालों को गुमराही या फ़िस्क़ व फ़िजूर (नाफरमानी) की तरफ मंसूब करता हो, या नाफरमानी करार दे रहा हो या तर्के वज़ीफ़ा या हराम काम या मुजरिम क़रार देता हो। हाफिज़ इब्ने हजर रह० ने इमाम शाफिई रह० का जो क़ौल नक़ल किया है, वह भी इस पर गवाह है जिसमें फ़रमाया है कि एक मुजतहिद को दूसरे मुजतहिद की गलती निकालना यानी उस को खतावार या मुजरिम कहना जाइज़ नहीं।

इज्तिहाद की शर्तें :–

हज़रत इमाम शाफिई रह० ने जहां इमामों की आपस में एक दूसरे की ग़ल्तियों को बयान करना सही क़रार नहीं दिया है वहीं उसकी उचित वजह और एक शर्त का भी ज़िक्र किया है। उनके अल्फाज़ यह हैं–

''इमाम शाफई रह० के कलाम में उसकी दलील मौजूद है कि कोई मुज्तहिद और इमाम दूसरे मुज्तहिद को ख़तावार न करार दे, क्योंकि उनमें से हर एक ने वह फर्ज़ अदा कर दिया जो उसके ज़िम्मे था। यानी उसको इज्तिहाद और क़ियास की शर्तें मौजूद हों और अहले इज्तिहाद के नज़दीक उसको इज्तिहाद व क़ियास का हक़ हासिल हो'' (जामेउल इल्म पेज 3, जिल्द 2)

''इससे मालूम हुआ कि दो अलग–अलग रायों का यह सम्मान कि उनमें से किसी को मुन्कर (बुरा) न कहा जाये और उसे कहने और मानने वालों को ख़तावार न कहा जाये, यह सिर्फ़ इस सूरत में है कि इज्तिहादे सही उसकी शर्तो के के मुताबिक हो। आज कल का सा जाहिलाना इज्तिहाद न हो कि जिसको अरबी ज़बान भी पूरी नहीं आती और क़ुरआन व हदीस से उसका ताल्लुक़ कभी नहीं रहा, उर्दू और अंग्रेजी तर्जुमों के सहारे क़ुरआन व हदीस से मसले बयान करना शुरू कर दिया। ऐसा इजितहाद खुद एक गुनाहे अज़ीम है और उससे पैदा होने वाली राय दूसरा

गुनाह और गुमराही और जिस पर नकीर वाजिब है।

सुन्नत व बिदअत की कशमकश में सही तर्जे अमलः–

हमारे समाज में मज़हब के नाम पर एक इख़्तिलाफ़ वह भी है जो विदअत व सुन्नत के नाम से पैदा हुआ कि बहुत से लोगों ने क़ुरआन व सुन्नत की व्याख्या में सही उसूलों को छोड़कर व्यक्तिगत रायों को इमाम बना लिया और नये–नये मसले पैदा कर दिये। इस तरह के इख़्तिलाफ़ात निःसंदेह वह इख्तिलाफ और फिरक़ा बाज़ी है जिनसे क़ुरआन व सुन्नत में मुसलमानों को खबरदार किया गया है। उनको खत्म या कम करने की कोशिश बिला शुब्हा फ़ायदेमन्द है, लेकिन क़ुरआन करीम ने इसका भी एक खास तरीक़ा बतलाया है जिसके ज़रिये इख्तिलाफ़ की दरारें कम होती चली जायें और बढ़ने न पायें, यह वही दावत इललख़ैर (नेकी की तरफ बुलाने) के उसूल हैं जिनमें से सबसे पहले हिकमत व तदबीर फिर ख़ैर–ख़्वाही व हमदर्दी और नर्मी और क़ाबिले क़ुबूल अन्दाज में क़ुरआन करीम के सही मफ़हूम की तरफ़ बुलाना है और आख़िर में ‘‘यानी हुज्जत व दलील के साथ समझने और समझाने की कोशिश है मगर अफ़सोस कि आज कल आम ओलमा इल्म और मुस्लेहीन ने उन उसूलों को नज़र अन्दाज़ कर दिया। सिर्फ़ बहस व मुबाहसा में, और वह भी नामुनासिब अन्दाज़ से

मशगूल हो गये कि अपने मुखालिफ़ का मज़ाक उड़ाना और उसको नीचा दिखाने के लिए झूटे, सच्चे जाइज़ व नाजाइज़ हथकन्डे इस्तेमाल करना इख्तियार कर लिया जिसके नतीजे में लड़ाई झगड़े का बाज़ार तो गर्म हो गया मगर लोगों की इस्लाह का कोई पहलू न निकला।

उम्मत में फ़िरका बन्दी की वजहें :–

मैंने इस इब्तिदाई गुज़ारिश को इतना लम्बा कर दिया और इतने विस्तार से बयान करना इसलिये गवारा किया कि मुसलमानों के दीनदार तबको और इस्लाह और दीनी खिदमात अंजाम देने वालों के दरम्यान जो इख्तिलाफ़ आज पाया जाता है वह आमतौर से इन्हीं हक़ीक़तों को नज़र अंदाज करने का नतीजा है।

अब मैं उन और वजहों को पेश करता हूँ जो मेरे ग़ौर व फिक्र की हद तक मुसलमानों में आपसी इख्तिलाफ़ और लड़ाई–झगड़े का सबब बने हुये हैं, और अफ़सोस इसका है कि इसको ख़िदमते दीन समझ कर इख़्तियार किया जाता है।

ग़ुलू (बढ़ाचढ़ा कर बयान करना):–

मेरे नज़दीक इस लड़ाई–झगड़े का एक बहुत बड़ा सबब फ़ुरूई और इज्तिहादी (वह बातें जिनका सम्बंध दीन की बुनियादी बातों से न हों) मसायल में और बेजा तरफ़दारी और अपने इख्तियार किये हुये रास्ते के अलावा

दूसरे तरीक़े को अमली तौर ग़लत और ग़ुनाह क़रार देना और उस पर अमल करने वालों के साथ ऐसा मामला करना जो मज़हब मुखालिफ़ और गुमराहों के साथ करना चाहिये था। इस पर सारी उम्मत सहमत भी है और अक़्ली तौर पर उसके सिवा कोई सूरत भी दीन पर अमल करने की नहीं है कि जो लोग खुद इज्तिहाद का दर्जा नहीं रखते, वह इज़्तिहादी मसायल में किसी इमामे मुजतहिद की पैरवी करें और जिन लोगों ने अपने नफ़्स को आज़ादी और नफ़्स परस्ती से रोकने के लिए दीनी मसलहत समझ कर किसी एक इमाम की पैरवी इख़्तियार कर लिया है, वह क़ुदरती तौर पर एक जमाअत बन जाती है इसी तरह दूसरे मुजतहिद की पैरवी करने वाले दूसरी जमाअत की सूरत इख्तियार कर लेते हैं। अगर जमाअतबन्दी सकारात्मक अन्दाज़ में सिफ़ इज्तिहादी मसलों की हद तक, अपनी तालीमी और अमली आसानियों के लिये हो तो न उसमें कोई हर्ज है, न कोई फिरकाबन्दी और न मिल्लत के लिये इसमें कोई नुकसान।

नुकसानदेह और खतरनाक एक तो उसका नकारात्मक रूप यह है कि अपनी राय और इख़्तियार से इख्तिलाफ़ रखने वालों के साथ लड़ाई-झगड़ा और दूसरे उन फ़ुरूई (ग़ैर बुनियादी) मसाइल की बहसों में गुलू व इन्तिहा कि सारा इल्म व तहक़ीक का ज़ोर और बहस व

मबहासे की क़ूव्वत और उम्र के इन्तिहाई क़ीमती अवक़ात इन्हीं बहसों की भेंट चढ़ जायें। अगर्चे ईमान व इस्लाम के बुनियादी और क़तई इज्माई (सर्वसम्मत) मसाइल पर हमले हो रहे हों, कुफ्र और बेदीनी दुनिया में फैल रही है, सबको नज़र अंदाज करके हमारी इल्मी तफरीह (मनोरंजन) यही फ़ुरूई बहसें बनी रहें, जिनके ताल्लुक से तफ़सील से अभी आप पढ़ चुके हैं कि उनमें हज़ार तहक़ीक़ात और खोजबीन के बाद भी बात इससे आगे नहीं बढ़ती कि यह राजेह (बेहतर) है और इसके खिलाफ़ मरजूह (कमबेहतर) और इस राजेह मरजूह का भी यक़ीनी फ़ैसला न दुनिया में हो सकता है, न बरजख़ में इनका सवाल होगा, न महशर में इस राजेह-मरजूह का एलान होगा।

इसी तरह न इन मसाइल में इख्तिलाफ़ रखने वालों पर ऐतराज़ करना सही है न उनको खतावार मुजरिम ठहराना सही है। इस वक्त हमारी क़ौम का क़ाबिले इहतेराम तबक़ा ओलमा व फुक़हा का खासतौर से तालीम व तसनीफ़ में मसरूफ है, उनके रातो-दिन की व्यवस्तताओं का जाइज़ा लिया जाये तो अधिकतर लोगों की इल्मी तहक़ीक़ात और जेद्दोजहद की सारी ताक़त और ऊर्जा इन्हीं ग़ैर ज़रूरी बहसों में सीमित नज़र आयेगी।

ग़ौर करने का मक़ाम :-

इनमें कुछ लोगों की ज़्यादती तो यहां तक बढ़ी हुई है

कि अपने से मुख़्तलिफ राय रखने वालों की नमाज़ को ग़लत और उनको तारिक़े क़ुरआन समझकर अपने ख़ास मसलक की इस तरह दावत देते हैं जैसे किसी इस्लाम मुखलिफ़ को इस्लाम की दावत दी जा रही हो, और इसी को दीन की सबसे बड़ी ख़िदमत समझे हुये हैं।

मालूम नहीं यह लोग इस्लाम की बुनियादों पर चारों तरफ़ से हमलावर तूफ़ानों से बाखबर नहीं या जानबूझ कर ऑखे बंद करते हैं। इस वक्त जबकि एक तरफ़ तो खुले हुये कुफ्र से ईसाइयत और कम्यूनिज़्म ने पूरे इस्लामी देशों और इस्लामी हलकों में कब्ज़ा किया हुआ है और यह दोनों कुफ्र तूफानी रफतार के साथ इस्लामी देशों में फैल रहे हैं, सिर्फ पाकिस्तान में हज़ारों की तादाद हर साल मुर्तद और बेदीन हो जाती है, दूसरी तरफ़ कुफ्र, निफ़ाक, और बेदीनी खुद इस्लाम का नाम लेने वालों में कहीं क़ादियानियत और मिर्ज़ाईयत के लिबास में, कहीं अहले क़ुरआन और इन्कारे हदीस के नाम से, कहीं यूरोप से लाई हुई इबाहियत (Hedonism) और तमाम हराम चीज़ों को हलाल करने के उपायों से, हमारे ईमान पर डाका डाला जा रहा है। और यह बेदीनी, कुफ्र व निफ़ाक़ पहले कुफ्र से इसलिये ज़्यादा ख़तरनाक है कि इस्लाम और क़ुरआन के नाम के साथ आता है, जिनके मक्र व फरेब में सीधे-साधे जाहिल अवाम का तो ज़िक्र ही क्या है, हमारे नये-नये तालीम याफ्ता

नौजवान ज़्यादा तादाद में इसलिये आ जाते हैं, कि नई तालीम और नई समाजी ज़िन्दगी ने उनको दीनी तालीम और इस्लामी उसूलों से इतना दूर फेंक दिया है कि वह दुनियावी इल्म व हुनर के माहिर कहलाने के बावजूद मज़हब और दीन की बुनियादी मालूमात से भी वंचित कर दिये गये हैं। और खुले और छुपे कुफ्र की इन सारी किस्मों से भी अगर कुछ खुशनसीब मुसलमान बच जायें तो, बेहयायी, बेशर्मी, नग्नता, अश्लीलता, नंगेनाच, गाने की महफिलों, घर-घर रेडियो और टी.वी. के ज़रिये फिल्मी गानों और सिनेमाओं की ज़हरीली फज़ाओं से कौन है जो बच निकले।

इस्लाम और क़ुरआन का नाम लेने वाले मुसलमान आज सारे जुर्मो और बदअखलाक़ियों में डूबे हुये हैं, हमारे बाज़ार झूठ-फ़रेब, सूद-जुअे से भरे हुये हैं, और उनके चलाने वाले कोई यहूदी नहीं, हिन्दू बनिये नहीं बल्कि इस्लाम के नाम लेवा हैं। हमारे सरकारी दफतर, रिश्वत, ज़ुल्म व ज़्यादती, कामचोरी, बेइमानी और बेरहमी के ट्रेनिंग सेन्टर बने हुये हैं और उनके कारफरमां भी अंग्रेज हैं न हिन्दू बल्कि मुहम्मद सल्ल० के नाम लेने वाले और आख़िरत के दिन पर ईमान रखने का दावा करने वाले हैं। हमारी अवाम इल्मेदीन से कोसों दूर जिहालत में डूबे हुये, दीन के फ़रीज़ों और वाजिवात से बेखबर, मुश्रिकाना रस्मों

रिवाज और खेल तमाशों के रसिया हैं।

ऐ बसेरा परदये यसरब बख्वाब

खेज़ कि शुद मशरिक व मग़्रिब ख़राब

इन हालात में क्या हम पर यह वाजिब नहीं कि हम गौरोफिक्र से काम लें और सोचें कि उस वक्त हमारे आक़ा रसूलुल्लाह सल्ल० का मुतालबा और उम्मीद ओलमा से क्या होगी ? और अगर महशर में आप सल्ल० ने हमसे सवाल कर लिया कि मेरे दीन और शरीअत पर इस तरह के हमले हो रहे थे, मेरी उम्मत इस बदहाली में घिरी हुई थी, तुम नबूअत के वारिस होने के दावेदार कहां थे ? तुमने इस विरासत का क्या हक़ अदा किया? तो क्या हमारा यह जवाब काफी हो जायेगा कि हमने रफ़्येदैन (नमाज़ में बार-बार हाथ उठाना) के मसले पर एक किताब लिखी थी, या कुछ तालिब इल्मों को शरहेजामी (फ़िक़ह की किताब) का खुलासा खूब समझाया था या हदीस में आने वाले इज्तिहादी मसायल पर बड़ी दिलचस्प तकरीरें की थीं या अपने क़ूव्वते तहरीर और जुमलेबाज़ी के ज़रीये दूसरे ओलमा व फ़ुज़ला को खूब ज़लील किया था।

फ़ुरूई और इज्तिहादी मसायल में बहस व मुबाहसा जब कि नामुनासिब नहीं अगर वह अपनी सीमा के अन्दर, इख़लास से, अल्लाह के लिये हो, लेकिन जहां हम यह देख रहे हों कि इस्लाम व ईमान की बुनियादें हिला देने वाले

फ़ितनों की ख़बर हम सुनते हैं, अल्लाह व रसूल सल्ल० के आदेशों की नाफरमानी बल्कि हंसी और मज़ाक अपनी ऑखों से देखते और कानों से सुनते हैं मगर हमारे कान पर जूं तक नहीं रेंगती, तो इसकी क्या उम्मीद की जा सकती है कि यह फ़ुरूई बहसें हम इखलास के साथ अल्लाह तआला के लिये कर रहे हैं? अगर इनमें कुछ तक़वा और इख़लास हो तो हम इन हालात के तहत इस्लाम और दीन के तकाज़ों को जानते और फ़ुरूअ से ज़्यादा उसूले इस्लाम की हिफ़ाज़त में लगे होते । हमने तो गोया इल्मी और दीनी ख़िदमात को इन्हीं फ़ुरूई बहसों में सीमित कर रखा है और मेहनत व मशक्कत की पूरी ताक़त इसी पर झोंक रखी है, इस्लाम के उसूली और बुनियादी मसाइल और ईमान की सरहदों को दुश्मनों के हमले के लिये खाली छोड़ दिया है। हमको लड़ना किस महाज़ पे चाहिये था और हमने ताक़त किस महाज़ पर लगा दी। यह तो तास्सुब की ज़्यादती का नतीजा है।

''इन्नालिल्लाह व इन्ना इलैह राजेऊन''

इसी के साथ दूसरी भारी गलती इन इज्तिहादी मसायल में इख्तिलाफ़ की सीमाओं को तोड़कर फिरकाबन्दी और टकराव, लड़ाई-झगड़ा और एक दूसरे का हंसी व मज़ाक उड़ाने तक पहुँच जाता है जो किसी शरीअत व मज़हब में जाइज़ नहीं और अफ़सोस है कि यह सब कुछ

इल्मे दीन की खिदमत के नाम पर किया जाता है और जब यह मामला उन उलमा के समर्थकों तक पहुँचता है तो वह इस लड़ाई को एक जिहाद क़रार देकर लड़ते हैं और ज़ाहिर है कि जिस कौम का जिहाद खुद अपने ही हाथों और बाहों से होने लगे उसको किसी दुश्मन से लड़ने और कुफ्र व बेदीनी से जंग की फ़ुर्सत कहां।

क़ुरआन व हदीस में इसी हद से निकल जाने का नाम फ़िरक़ा बन्दी है जो जाइज़ इख्तिलाफ़े राय से अलग एक चीज़ है। क़ुरआन मजीद में एक जगह इर्शाद है ''तुम सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से एक पकड़ लो'' दूसरी जगह अल्लाह तआला की तरफ से वसीअत का ज़िक्र है जो पिछले सारे नबियों को की गयी हैं इसके अल्फाज़ यह है ''दीन क़ायम करो और इसमें इख्तिलाफ न करो'' इमामे तफ़सीर अबुल आलिया रह० ने फ़रमाया कि इक़ामते दीन से मुराद इख़लास है और ''लाततफ़र्रकू'' का मतलब यह है कि आपस में दुश्मनी न करो, भाई-भाई बन कर रहो। इस वसीअत के बाद क़ुरआन में बनी इसराईल के अलगाव का बयान करके अहले इस्लाम को खबरदार किया गया है कि वह उनके तरीक़े पर न चले, इस में इर्शाद है '' '' हज़रत अबु आलिया रह० ने इसकी तफ़सीर में फ़रमाया कि ''बगयम बैनहुम'' में इशारा है कि ऐसे इख़्तिलाफ़ का दुश्मनी और लड़ाई-झगड़े तक पहुँचना

कभी दीन की वजह से नहीं होता बल्कि.... यानी यह दुश्मनी जब भी ग़ौर करो तो उसका सबब दुनिया, माल व मन्सब से मुहब्बत होती है, जिसको नफ़्स या शैतान ख़िदमते दीन का नाम देकर खुशनुमा कर देता है, वरना इस तरह के मसायल में इख्तिलाफ़े राय की सीमा वही है जो पहले बयान हो चुकी है, कि मुस्बत (Positive) तौर पर अपने अमल के लिये एक मसलक को सही मानकर इख्तियार कर लें और उससे मुखतलिफ मसलक रखने वालों से लड़ते न फिरें। जिस तरह दुनिया में इन्सान जब बीमार होता है, अपने इलाज के लिये किसी एक हकीम या डाक्टर का चुनाव करके सिर्फ़ उसी के कौल पर भरोसा करता है और उसी की हिदायत और निर्देश पर अमल करता है, मगर दूसरे डाक्टरों को बुरा-भला कहता नहीं फ़िरता। आप किसी एक व्यक्ति को वकील बनाकर अपना मुकदमा उसके सुपुर्द कर देते हैं मगर दूसरे वकीलों से लड़ते नहीं फिरते। इज्तिहादी और इख्तिलाफ़ी मसायल में भी ठीक यही आपका तरीकेकार होना चाहिये।

जमाअतों का ग़ुलू :-

हमारी दीनी जमाअतें जो तालीमेदीन, दावत व तबलीग़ और इस्लाहे मआशरा के लिये क़ायम हैं और अपनी-अपनी जगह लाभकारी ख़िदमात भी अंजाम दे रही हैं उनमें बहुत से ओलमा, मुत्तकी और मुख़लेसीन काम

कर रहे हैं। अगर यही एकजुट और मुत्तहिद होकर कामों को बांटकर दीन में पैदा होने वाली सारी रुकावटों को दूर करने की फ़िक्र और सम्भावित सीमा तक एक दूसरे का सहयोग करने लगें और इक़ामते दीन के आम मक़सद की ख़ातिर हर जमाअत दूसरी जमाअत को अपना हाथ-पैर समझे और दूसरों के काम की कद्र ऐसी ही क़द्र करें जैसे अपने काम की करते हैं, तो यह मुख़्तलिफ़ जमाअतें अपने-अपने निज़ाम में रहते हुये भी इस्लाम की एक अज़ीमुश्शान ताक़त बन सकती हैं और एक अमल के ज़रीये अकसर दीनी ज़रूरतों को पूरा कर सकती हैं।

मगर आमतौर पर यह हो रहा है कि हर जमाअत ने जो अपनी कोशिश और अमल का एक दायरा और तरीकेक़ार है, अमली तौर पर ऐसा मालूम होता है कि वह ख़िदमते दीन को इसी में मुनहसिर समझ रहे हैं, गो ज़बान से न कहें। दूसरी जमाअतों से अगर लड़ाई-झगड़ा भी नहीं तो बेक़दरी ज़रूर देखी जाती है। इसके नतीजे में इन जमाअतों में भी एक क़िस्म का बिखराव और इन्तिशार पाया जाता है।

ग़ौर करने से उसका सबब यह मालूम होता है कि मक़सद सबका अगर्चे दीन की तबलीग, हिफ़ाज़त और मुसलमानों की इल्मी व अमली और इख़लाकी इस्लाह ही है, लेकिन इस मकसद को हासिल करने के लिये किसी ने एक

दारूल उलूम क़ायम करके तालीमे दीन की अहम ख़िदमत संस्था दी, किसी ने एक तबलीग़ी जमाअत बनाकर इस्लाह और हिदायत का फर्ज़ अदा किया, किसी ने कोई अंजुमन बनाकर दीन के प्रचार व प्रसार का तहरीरी इन्तिज़ाम किया, किसी ने फ़तवा के ज़रीये खुदा के बन्दों को ज़रूरी इहकाम बताने के लिये दारूल इफ्ता (फतवे देने का इदारा) क़ायम किया, किसी ने इस्लाम के ख़िलाफ़ काफिराना फ़रेब के जवाब में किताबों का साप्ताहिक या मासिक पत्रिकाओं और अखबारों का सिलसिला जारी किया। यह सारे काम अगर्चे रूप में अलग-अलग है, मगर हक़ीक़त में एक ही मक़सद के हिस्से हैं। इन मुख़्तलिफ़ मैदानों में जो मुख़्तलिफ़ जमाअतें काम करेंगी यह ज़रूर है कि हर एक का निज़ामे अमल और तरीकेकार मुख़्तलिफ़ होगा, इसलिए हर जमाअत ने बजातौर पर सहूलत के लिये अपने अपने स्वभाव और माहौल के मुताबिक़ एक निज़ामे अमल और उसके क़ानून व क़ायदे बना रखे हैं और हर जमाअत उनकी पाबन्द है। यह ज़ाहिर है कि अस्ल मक़सद तो और क़ुरआन व सुन्नत से साबित है, इससे हटना क़ुरआन व सुन्नत की सीमाओं से निकलना है, लेकिन यह अपना बनाया हुआ निज़ामे अमल और उसके तन्जीमी क़ानून व क़ायदे न क़ुरआन व सुन्नत हैं, न उनकी पैरवी शरीअत की नज़र में हर एक के लिये ज़रूरी है, बल्कि जमाअत के

ज़िम्मेदारों ने अमल की सुहूलत के लिये उनको इख्तियार कर लिया है। इनमें हर ज़रूरत के लिहाज़ से तबदीलियां वह खुद भी करते रहते हैं और हालात और माहौल बदले पर उसको छोड़कर कोई दूसरा निज़ामे अमल भी किसी के नज़दीक नाजाइज़ या मकरूह नहीं होता, मगर इसमें अमली गुलू व ज़्यादती तक़रीबन हर जमाअत में यह पायी जाती है कि अपने बनाये हुये निज़ामेअमल या तरीकेकार को क़ुरआन व सुन्नत का दर्जा दे दिया गया। जो शख्स इस निज़ामे अमल में शरीक नहीं अगर्चे मक़सद का कितना ही अज़ीम काम कर रहा हो, उसको अपना भाई और अपना शरीकेकार नहीं समझा जाता, और अगर कोई इस निज़ामे अमल में शरीक था फिर किसी वजह से उसमें शरीक न रहा तो अमलन उसे अस्ल मक़सद और दीन से हटा हुआ समझ लिया जाता है और उसके साथ वही मामला किया जाता है जो दीन से निकल जाने वालों के साथ होना चाहिये, अगर्चे वह अस्ल मक़सद यानी अक़ामते दीन की ख़िदमत पहले से भी ज़्यादा करने लगे। इस गुलू के नतीजे में वही बिखराव व तास्सुब और गिरोह बन्दी की आफ़तें अच्छे खासे दीनदार लोगों में पैदा हो जाती हैं जो जाहिली असबियतों के शिकार लोगों में पाई जाती हैं।

पैगम्बराना दावत को नज़र अंदाज करनाः–

हमारी तबलीग़ व दावत और इस्लाही कोशिशें को

बेकार करने और गिरोहबन्दी और लड़ाई झगड़े की खलीज को और बढ़ाने में सबसे ज़्यादा दख़ल इसको है कि आज कल के वक्ताओं और लेखकों ने आमतौर से दावत व इस्लाह के पैग़म्बराना तरीकों को नज़र अन्दाज करके अखबारी ज़बान और जुमले बाज़ी को ही बात में वज़न पैदा करने और बाअसर बनाने का ज़रीआ समझ लिया है। और तजुर्बे और अनुभव से स्पष्ट होता है कि यह एक ऐसा मनहूस तरीक़ा है कि उससे खताकार या गुमराह की इस्लाह की कभी उम्मीद नहीं रखी जा सकती। यह तरीक़ेकार उनको ज़िद और हठधर्मी पर और ज़्यादा आमादा कर देता है और इस्लाह के बजाये दिलों में दुश्मनी के बीज बोता है और दुश्मनी की आग भड़काता है। हां अपने शुभ चिन्तकों और अक़ीदतमंदों के लिये कुछ देर का सामाने तफ़रीह ज़रूर हो जाता है और उनकी तारीफ़ से लिखने वाले भी कुछ यह समझने लगते हैं कि हमने दीन की बड़ी ख़िदमत की है। लेकिन जो लोग उस बात के मुख़ातब होते हैं उनके दिलों से पूछिये कि अगर किसी वक्त उनको इस बात के हक़ होने का यक़ीन भी हो जाये तो यह जुमले बाज़ी और हंसी और मज़ाक का तरीक़ा उनको हक़ की तरफ आने में रुकावट नहीं बन जाता? और यह तरीका उन्हें हमेशा के लिए इस दाई का दुश्मन नहीं बना देता है ?

पैग़म्बराना दावत के चार तत्व :–

इसके ठीक विपरीत अल्लाह ताआला के रसूलों

और पैगम्बरों की दावत का तरीक़ा देखा जाये तो उसके अल्फ़ाज़ सरल, सादा, आमफ़हम और इन्सानी हमदर्दी से भरपूर और नम्रतापूर्ण होते हैं। वह मुखालिफ़ों और विरोधियों की सख्त तरीन बदकलामी सुनकर भी जवाब नैतिकता और नम्रता से देते हैं, व्यंग और कटाक्ष नही करते। दिल में हमदर्दी का जज़्बा होता है कि किसी तरह वह हक़ बात क़ुबूल करले। उसके लिये हिक़मत के साथ तरीक़े अपनाते हैं। पैग़म्बराना दावत की रूह क़ुरआन के एक लफ्ज़ ''नज़ीर'' से समझी जा सकती है जो हर पैगम्बर के लिये क़ुरआन करीम में इस्तेमाल हुआ है। क़ुरआन करीम में जगह-जगह इनको ''बशीर'' व ''नज़ीर'' कहा गया है। लफ्ज़ ''नज़ीर'' का तर्जमा ''उर्दू में डराने वाले'' का लिया जाता है, मगर डराने का लफ्ज़ नज़ीर का पूरा भाव और मफ़हूम अदा नहीं करता। उर्दू ज़बान की सीमितता की वजह से इस तर्जमा को इख्तियार कर लिया गया है। हक़ीक़त यह है कि डराने की मुख्तलिफ़ सूरतें होती हैं, चोर और डाकू का भी डराना है, खूंखार जानवर और दुश्मन का भी डराना है, और एक मुहब्बती बाप भी अपने बच्चे को सांप, बिच्छू, ज़हर और आग से डराता है। पहली क़िस्म सिर्फ डराना है नज़ारत व अंज़ार नहीं। चोर डाकू या दुश्मन और दरिन्दा को नज़ीर नहीं कहा जायेगा, और दूसरी क़िस्म जो मेहरबान बाप की तरफ़ से है वह डराना मुहब्बत और

हमदर्दी की बुनियाद पर है। नुकसानदेह और तक़लीफ़देह चीज़ों से डराने वाले को नज़ीर कहा जाता है। नबियों के लिये नज़ीर का लफ्ज़ इस्तेमाल फ़रमाकर उनकी तबलीग़ व तालीम की रूह की तरफ़ इशारा कर दिया गया। वह सिर्फ़ कोई पैग़ाम ही नहीं पहुँचाते बल्कि हिकमत और हमदर्दी और भलाई के ज़ज्बे से इस पैग़ाम को बाअसर बनाने और सामने वाले को तबाही और हिलाकत से बचाने की पूरी तदबीर और कोशिश भी करते हैं।

क़ुरआन करीम में पैगम्बरों की दावत के जो उसूल एक आयत में बयान किये गये हैं वह मानों कि इस लफ्ज़ ''नज़ीर'' की व्याख्या हैं। अल्लाह तआला का इर्शाद है ''बुलाओ अपने रब के रास्ते की तरफ़ उमदा नसीहत के साथ और अच्छे अन्दाज़ से बहस करो'' इसमें दावत इलल्लाह (अल्लाह की ओर दावत) के आदाब में सबसे पहले ''हिकमत'' को रखा गया है जिसका मतलब यह है कि दाई (दीन की ओर बुलाने वाला) का काम सिर्फ एक पैग़ाम व कलाम को लोगों के कानों में डाल देना नहीं, बल्कि हिकमत और तदवीर से मुनासिब वक्त और मुनासिब माहौल देख कर ऐसे अन्दाज़ से पहुंचाना है कि मुखातब के लिए क़ुबूल करना आसान हो जाये।

दूसरी चीज़ ''नसीहत'' है जिसके मायने किसी को हमदर्दी व खैर ख्वाही के साथ नेक काम की तरफ बुलाने के

है। उससे मालूम हुआ कि दाई के लिये ज़रूरी है कि जो गुफ्तगू करे हमदर्दी और भलाई के जज़्बे से करे, तीसरी चीज़ नसीहत के साथ ''हसना'' की ताकीद है, इसमें इशारा मज़मून को नर्म और दिलपसन्द बनाना है। क्योंकि कभी-कभी खालिस हमदर्दी व खैर ख्वाही से किसी को उसकी भलाई की तरफ बुलाया जाता है। मगर विषय सामग्री और अन्दाज़ दिल की चोट करने वाला होता है, तो वह दावत भी असरदार नहीं होती, इसलिए नसीहत के साथ ''हसना'' की ताकीद है। हासिल यह कि इस आयत ने पैगम्बराना दावत के आदाब और तरीकों में इन तीन चीज़ों को ज़रूरी क़रार दिया। पहले हिक़मत और ग़ौर व फिक्र, इस काम के लिये दावत बेकार न हो जाये बाअसर हो। दूसरे हमदर्दी व ख़ैर ख़्वाही से नेक काम की दावत। तीसरे इस दावत के मज़मून और अन्दाज़े गुफ्तगू नर्म और क़ाबिले क़ुबूल हो।

आख़िर में एक चौथी चीज़ यह बतलाई गयी कि अगर दावत को उन आदाब के साथ पेश करने पर भी क़ुबूल न किया जाये और नौबत ''मुजादला'' यानी बहस-मुबाहसा ही की आ जाये तो फिर आमियाना अन्दाज़ का ''मुजादला'' न होना चाहिये बल्कि ''बिल्लती हिया अहसन'' यानी अच्छे तरीक़े पर होना चाहिए। इब्ने कसीर रह० ने इसकी तफ़सीर में फ़रमाया कि मुजादला (बहस) भी

नर्मी, ख़ैरख्वाही और अच्छे अन्दाज़ के साथ होना चाहिये और तफ़सीरे मज़हरी में फ़रमाया कि ''मुजादला बिल्लती हिया अहसन'' यानी अच्छे तरीके से बहस करो यह है कि इसमें अपना गुस्सा उतारना या अपने नफ़्स की बड़ाई पेशे नज़र न हो, ख़ालिस अल्लाह तआला के लिए कलिमये हक़ को बलन्द करने के लिए हो और ''मुजादला बिल्लती हिया अहसन'' सिर्फ मुसलमानों के लिये नहीं बल्कि ग़ैर मुस्लिमों से मुबाहसा की नौबत आ जाये तो इसमें भी अंबिया अलै० को इसी की हिदायत की गयी है। एक आयत में इर्शाद है ''वला तुजादिलू अहलल किताबे इल्ला बिल्लती हिया अहसन'' यानी क़ाफिरों और किताब वालों से मुबाहसा की नौबत आये तो वह भी ''बिल्लती हिया अहसन'' यानी नर्मी, खैर ख्वाही और अच्छे अंदाज़ से होना चाहिए।

''नबियों का बेहतरीन नमूना'':–

नबियों की दावत व इस्लाह के वाक़िआत जो क़ुरआन व हदीस में अनगिनत बार आये हुये हैं, उनमें एक–एक को देखिये तो पूरी उम्र की कोशिशों को इसी अन्दाज़ पर पायेंगे। हज़रत नूह अलै० सौ–पचास साल नहीं बल्कि नौ सौ साल तक जिस क़ौम को दावत देते रहे और हमदर्दी व खैर ख़्वाही से समझाते रहे, इसके बावजूद जब उनकी क़ौम ने सख्ती और बदतमीज़ी का मामला किया, उनको गुमराह और बेवकूफ बताया तो आपको मालूम है

कि उस रसूल मक़बूल अलै० ने क्या जवाब दिया ''ऐ मेरी कौम के लोगों (मेरे भाइयो) मुझमें कोई गुमराही नहीं, बल्कि मैं रब्बुल आलमीन की तरफ से रसूल बनाकर तुम्हारी भलाई के लिए भेजा गया हूँ।''

सरवरे कायनात हमारे रसूले अकरम सल्ल० की पूरी ज़िन्दगी के वाक़ियात इसी तर्ज़ के शाहिद हैं। हर तरह की तकलीफ़ें सहने के बाद भी ज़ालिमों से बदला लेने का तो ज़िक्र ही क्या है उनके लिये भी भलाई की दुआ की जाती ''मेरी क़ौम को हिदायत दे इसलिए कि वह जानती नहीं।

जिन आलिमों को नबियों की विरासत का कुछ हिस्सा मिला है, उन सब का भी दावत व तबलीग़ में यही हाल रहा है। आखिरी दौर में सै० इस्माइल शहीद रह० का वाक़िया है कि देहली की जामा-मस्जिद से तक़रीर करके बाहर निकल रहे थे कि मस्जिद की सीढ़ियों पर कुछ गुन्डों ने रास्ता रोका और कहा- हमने सुना है कि आप हरामी औलाद हैं। मौलाना ने बहुत ही इत्मीनान के साथ जवाब दिया कि भाई ! आपको गलत ख़बर मिली है। मेरी वालिदा के निकाह के गवाह आज तक मौजूद हैं। वह जानते थे कि उनका मक़सद सिर्फ गाली देना और तकलीफ पहुँचाना है, मगर नबियों के वारिस का जो काम होना चाहिये वह किया, कि उनकी गाली को एक मामूली बात बना कर बात खत्म कर दी।

नबवी तरीक़ा और हम :–

हक़ीक़त यह है कि दावत व इस्लाह का काम नबी अलै० या उनके वारिस ही कर सकते हैं जो क़दम–क़दम पर अपना खून पीते हैं और दुश्मन की भलाई और हमदर्दी में लगे रहते हैं। उनका क़ौल व अमल में किसी मुखालिफ़ पर व्यंग और कटाक्ष की झलक भी नहीं होती, वह मुख़ालिफ़ के जवाब में जुमले बाज़ी की फिक्र नहीं करते, वह उन पर इल्ज़ाम नहीं लगाते। इसी का यह असर होता है कि कुछ रोज़ की मुखालफ़त के बाद बड़े–बड़े ज़ालिमों को उनके सामने झुकना पड़ता है, उनकी बात को मानना पड़ता है। आज अफ़सोस यह है कि हम नबवी तरीकों से इतनी दूर जा पड़े कि हमारी बातचीत और किताबों में उनकी किसी बात का रंग न रहा। आज कल के तबलीग़ व इस्लाह का काम करने वालों का कमाल यह समझा जाता है कि वह मुखालिफ़ पर तरह–तरह के इल्ज़ाम लगा कर उसको रुस्वा और बेइज्ज़त करे और ऐसा कटाक्ष और व्यंग करे कि सुनने वाला दिल को पकड़ कर रह जाये। इसी का नाम आज की भाषा में ज़बानदानी और उर्दू अदब है...इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन''

अल्लाह तआला तो अपने नबियों को जब दावत के मुक़ाम पर खड़ा करते हैं तो मूसा व हारून अलै० जैसे महान पैगम्बरों को फ़िरऔन जैसे ज़ालिम जाबिर की तरफ

भेजने के वक्त यह हिदायत देकर भेजते हैं ''पस फ़िरऔन से बात नर्म करना, शायद वह रास्ते पर आ जाये ''और अल्लाह से डर जाये''

आज हमारे ओलमा और इस्लाह का काम करने वाले और दावत व तबलीग में लगे रहने वाले लोगों में हज़रत मूसा व हारून अलै० से ज़्यादा बड़ा हादी और रहबर नहीं बन सकता और उनके मुखातब फ़िरऔन से ज़्यादा गुमराह और जालिम नहीं हो सकते, तो उनके लिये कैसे जायज़ हो गया कि जिससे उनका किसी मसले में इख्तिलाफ़ हो जाये तो उसकी पगड़ी उछालें और टांग खींचने की फ़िक्र में लग जायें, और उनकी हसीं उड़ायें और उन पर कटाक्ष करें और फिर दिल में खुश हो कि हमने दीन की बड़ी ख़िदमत अन्जाम दी है, और लोगों से उसकी उम्मीद लगाये कि हमारी ख़िदमात को सराहें और क़ुबूल करें।

मेरी नज़र में इस वक्त यह तीन वजहें हैं जो मुसलमानों को मुत्तहिद नहीं होने देतीं। हर इज्तिमा व सम्मेलन के नतीजे में इख्तिलाफ़, हर तन्ज़ीम के नतीजे में अलगाव ''हर इस्लाह के नतीज़े में फ़साद और हर दावत के नतीजे में नफ़रत हमारे सामने आती है। काश हम मिल कर सोचें और दूसरों की इस्लाह से पहले अपनी इस्लाह की फिक्र करें, क्योंकि अस्ल यही मर्ज़ है कि माल व मन्सब की

मुहब्बत और हसद व बुग्ज़ की गन्दगियों से हमारे दिल पाक नहीं। हमें इस पर बड़ा नाज़ है कि हम चोरी, रिश्वत, सूद, शराब, नाच व गाना और सिनेमा से परहेज़ करते हैं और नमाज़, रोज़े के पाबन्द हैं। लेकिन खतरा यह है कि हमारी यह नमाज़-रोज़े की पाबन्दी और सूद, शराब, नाच व गाना से परहेज़ कहीं ऐसा तो नहीं कि सिर्फ अपनी मोलवीगीरी के पेशे की खातिर हो। क्योंकि इस पेशे में इन चीज़ों की खपत नहीं, वरना अगर हम इन चीज़ों में से सिर्फ खौफ़े खुदा की बिना पर बचे हो तो माल व मंसब की मुहब्बत, हसद व बुग्ज़, घमण्ड व दिखावा से भी बचे होते, क्योंकि उनकी नजासत और नापाकी कुछ सूद व शराब से कम नहीं, मगर अन्दरूनी और बातिनी गुनाह हमारे कुर्ते और पगड़ी के साथ जमा हो सकते हैं, इसलिए उनकी परवाह नहीं होती, और यही वह चीज़े हैं जो दरअस्ल सारी फ़िरकाबन्दी की बुनियाद हैं। अल्लाह तआला हमें इन सारी आफ़तों से बचने की तौफीक अता फ़रमाये, ताकि हम एक दिल होकर दावत व इस्लाह का काम पैगम्बराना जज़्बे और पैग़म्बराना आदाब के साथ लेकर खड़े हो जाये।

खुलासा-ए-कलाम :-

फिक्र व नज़र रखने वालों से यह बात छुपी नहीं है कि इस वक्त दुनिया के हर हिस्से और मुल्क में मुसलमान जिन मुसीबतों और आफ़तों से घिरे हैं, उनका सबसे बड़ा

सबब आपस की गिरोहबन्दी और आपसी लड़ाई-झगड़ा है वरना तादाद और क़ुदरती अस्बाब के लिहाज़ से पूरी इस्लामी तारीख में किसी वक्त भी मुसलमानों को इतनी अज़ीम ताक़त हासिल नहीं थी जितनी आज है। और इस फ़िरका बन्दी के अस्बाब पर जब ग़ौर किया जाता है तो उसका सबब खुदा और आख़िरत से ग़फलत और दूसरी क़ौमों की तरह सिर्फ दुनिया की चन्द रोज़ा माल व दौलत और इज़्ज़त व मन्सब की बेलगाम हवस है, जो हमारे समाज में कभी सियासी इक़्तिदार के लिये आपसी टकराव, कारोबारी दौड़-धूप, उहदों और मन्सबों की खातिर आपसी टकराव की सूरत में हमारे समाज को तोड़-मोड़ देती है और कभी मज़हबी और दीनी नज़रियात की आड़ और मुखतलिफ़ निज़ामों और व्यवस्थाओं के रूप में एक दूसरे के खिलाफ़ गुस्ताखी, बेइज़्ज़ती, हंसी-मजाक़ का ज़रिया बन जाती हैं, अगर इज्तिहादी नज़रियात के आपसी इख्तिलाफ़ के बावजूद सहाबा व ताबिईन की तरह हमारी जंग का रुख सिर्फ कुफ्र, शिर्क और बेदीनी की तरफ हो जाये तो उसके मुक़ाबले में मुसलमानों की मुख्तलिफ़ जमाअतें मुत्तहिद होकर शीसा सिलाई हुई दीवार नज़र आयें।

ज़िम्मेदार उलमा से दर्दमन्दाना गुज़ारिश :-

राजनैतिक और आर्थिक मैदान, और पद व मंसब की दौड़ में बेएतेदालियों की रोकथाम तो फिलहाल हमारे

बस में नहीं, लेकिन खुद दीन व मज़हब के लिये काम करने वाली जमाअतों के नज़रियाती और निज़ामी इख्तिलाफ़ात एवं मक़सद की खातिर संतुलित और नियन्त्रित किये जा सकते हैं। यदि हम इस्लाम के बुनियादी उसूलों की हिफ़ाज़त और गुमरही व बेदीनी के सैलाब से हिफाज़त के अहम मक़सद को सही मायने में असली मक़सद समझ लें तो यह वह नुकतये वहदत यानी एकतासूत्र है कि जिस पर मुसलमानों के सारे फिरक़े और सारी जमाअतें जमा होकर काम कर सकती हैं और उसी वक्त इस सैलाब के मुक़ाबले में कोई बा असर काम अंजाम पा सकता है।

लेकिन हालात का जायज़ा यह बताता है कि मक़सदे असली ही हमारी नज़रों से ओझल हो गया है, इसलिए हमारी क़ूव्वत व ताक़त और इल्म व तहक़ीक़ का सारा ज़ोर आपस के इख्तिलाफ़ी मसायल पर लगता है, वहीं हमारे जलसों, तक़रीरों, रिसालों और अख़बारों का उनवान और शीर्षक बनते हैं। हमारे इस अमल से अवाम यह समझने पर मजबूर हो जाती है कि दीने इस्लाम सिर्फ इन दो चीज़ों का नाम है और जिस रूख को उन्होंने इख़्तियार कर लिया है उसके ख़िलाफ़ को गुमराही और इस्लाम दुश्मनी का नाम देते हैं, जिसके नतीजे में हमारी वह ताक़त जो कुफ्र व इल्हाद और बेदीनी और समाज में बढ़ती हुई बेहयायी के मुक़ाबले में खर्च होती, आपस के लड़ाई-झगड़े में खर्च होने

लगती है। इस्लाम व ईमान हमें जिस महाज़ और मैदान में लड़ने और क़ुर्बानी देने के लिये पुकारते हैं, वह महाज़ दुश्मनों की यलगार और हमले के लिये खाली पड़ा नज़र आता है। हमारा समाज बुराईयों से पटा पड़ा है, आमाल व अखलाक़ बर्बाद हैं, मामलात व मुआहेदात में फ़रेब है। सूद-जुआ, शराब, सुअर, बेहयायी और बदकारी ज़िन्दगी के हर हिस्से पर छा गये हैं। सवाल यह है कि नबियों के जायज़ वारिस और मुल्क व मिल्लत के निगहबानों को आज भी अपने से नज़रियाती इख्तेलाफ रखने वालों पर जितना गुस्सा आता है, उससे आधा भी उन खुदा के बागियों पर क्यों नहीं आता ? और आपस के नज़रयाती इख्तेलाफ के वक्त जिस ईमानी जोश का इज़हार होता है वह ईमान के इस अहम महाज़ पर क्यों ज़ाहिर नहीं होता ? हमारे क़लम और ज़बान का ज़ोर जिस शान से अपने इख्तेलाफ़ी मसायल में जिहाद करता है, उसका कोई हिस्सा ईमानी उसूलों पर होने वाले हमलों पर क्यों नहीं सर्फ़ होता ? मुसलमानों को बेदीन और मुर्तद बनाने वाली कोशिशों के मुक़ाबले हम ''शीशा पिलायी हुई दीवार'' क्यों नहीं बन जाते?

आखिर हम इस पर ग़ौर क्यों नहीं करते कि नबियों की आमद और क़ुरआन के उसूल का वह अज़ीम मक़सद जिसने दुनिया में इन्किलाब बरपा किया और जिसने औलादे

आदम को बर्बरता से निकाल कर इन्सानीयत से सरफराज़ किया, और जिसने सारी दुनिया को इस्लाम की गोद में डाल दिया, क्या वह सिर्फ यही मसायल थे जिनमें हम उलझ कर रह गये है ? और क्या दूसरों को हिदायत पर लाने का तरीका और पैगम्बराना दावत का यही विषय था जो आज हमने इख्तियार कर रखा है ?

''क्या अब भी वक़्त नहीं आया कि ईमान वालों के दिल अल्लाह के ज़िक्र और उसके नाज़िल किये हुये हक की तरफ झुक जायें ?

आखिर वह कौन सा वक्त आयेगा जब हम अपने नज़रियाती और निज़ामी मसायल से ज़रा आगे बढ़कर उसूले इस्लाम की हिफ़ाज़त और बिगड़े हुये समाज के इस्लाह और सुधार को अपना असली फर्ज़ समझेंगे, मुल्क में ईसाइयत और कम्यूनिज़्म के बढ़ते हुये सैलाब की ख़बर लेंगे, कादियानियत और इन्कारे हदीस और दीन को बदल देने के लिये स्थापित किये गये इदारों का पैग़म्बराना दावत व इस्लाह के ज़रीये मुक़ाबला करेंगे ?

और अगर हमने यह न किया और महशर में हमारे रहबर व आक़ा रसूले करीम सल्ल० ने हमसे यह सवाल कर लिया कि मेरी शरीअत और मेरे दीन पर यह हमले हो रहे थे। इस्लाम के नाम पर कुफ्र फैलाया जा रहा था, मेरी उम्मत को मेरे दुश्मनों की उम्मत बनाने की लगातार

कोशिश जारी थी, क़ुरआन व सुन्नत की खुले तौर पर तहरीक की जा रही थी, खुदा और रसूल सल्ल० की नाफ़रमानी अलल एलान हो रही थी, तो तुम इल्मेदीन के दावेदार कहां थे ? तुमने उसके मुक़ाबले कितनी मेहनत और क़ुरबानी पेश की? कितने भटके हुये लोगों को रास्ते पर लगाया ? तो आज हमें सोच लेना चाहिये कि हमारा जवाब क्या होगा।

राहे अमल :–

इसलिए मिल्लत का दर्द और इस्लाम व ईमान के उसूल व मक़सद पर नज़र रखने वाले ओलमा हज़रात से मेरी दर्द भरी गुज़ारिश है कि मक़सद की अहमीयत और नज़ाकत को सामने रखें। सबसे पहले तो अपने दिलों में इसका अहद करें कि अपनी इल्मी व अमली सलाहियत और ज़बान व कलम के ज़ोर को ज़्यादा से ज़्यादा इस महाज़ पर लगायेगे जिसकी हिफाज़त के लिये क़ुरआन व हदीस आपको बुला रहे हैं।

1– उलमा–ए–कराम इस बात का अहद भी कीजिये और फ़ैसला भी कि इस काम के लिये अपने मौजूदा कामों में से सबसे ज़्यादा वक़्त निकालेंगे।

2– दूसरे यह आपस की नज़रियाती और फ़िक़्ही इख्तिलाफ़ को सिर्फ अपने–अपने हलकये दर्स, तसनीफ़ व तालीफ़ और फ़तवा तक सीमित रखेंगे। अवामी जलसों,

अखबारों, इश्तेहारों, मुनाज़रों और झगड़ों के ज़रीये उनको न उछालेंगे। उन हलकों में भी पैगम्बराना उसूले दावत के समर्थक, दिल खराश विषयो से और व्यंग और कटाक्ष से हंसी व मज़ाक और अखबारी बयान बाज़ी से परहेज़ करेंगे।

3– तीसरे यह कि समाज में फैली हुई बीमारियों की इस्लाह के लिये दिल को लगने वाले मज़मून और मुहब्बत भरे लहजे के साथ काम शुरू कर देंगे।

4– चौथे यह कि अधर्म और बेदीनी और क़ुरआन व सुन्नत में बदलाव के मुक़ाबले के लिए पैगम्बराना उसूले दावत के तहत हक़ीमाना तदबीरों, मुहब्बत व नसीहत भरे बयानों और दिल नशीन दलीलों के ज़रीये ''अच्छे अन्दाज़ के साथ'' अपने ज़ोरे बयान और ज़ोरे क़लम को वक्फ़ कर देगें।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ अफ़सोस कि न मेरा मन्सब था न ओलमा–ए–कराम के सामने मुझे ऐसी हिम्मत करनी चाहिये थी मगर दुखी दिल के कुछ कलमात हैं जो ज़बान पर आ गये। मेरे मुहतरम बुज़ुर्ग मुझे माफ़ फ़रमाये और अगर इन बातों में कोई मुफ़ीद पहलू हो तो वह खुद उनका अपना काम है, उसको इख्तियार फ़रमायें। मुझे उम्मीद है कि अगर ओलमा हज़रात इस तरफ़ मुतवज्जे हो गये और काम शुरू किया तो अल्लाह तआला का वादा

''अगर तुम अल्लाह की मदद करोगे तो अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा'' ऑखों से पूरा होता हुआ देखेंगे।

इख़्तिलाफ़े उम्मत और उसका हल

मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफी रह० साहब ने एक दूसरे मौके पर ''इख़्तिलाफ़े उम्मत और उसका हल'' के शीर्षक से तक़रीर फ़रमाई और जो फ़िल हक़ीक़त यह ''वहदते उम्मत'' के तकमील की हैसियत रखती है। इसी मुनासिबत से इस तक़रीर को भी ''वहदते उम्मत'' के ख़िताब के साथ ही प्रकाशित किया जा रहा है, ताकि बात मुकम्मल हो जाये और मर्ज़ व इलाज दोनों की तफ़सीलात बयेक वक़्त सामने आ जायें। (प्रकाशक)

इख़्तिलाफ़े उम्मत और उसका हल :–

शैखुल हिन्द मौलाना महमूदुल हसन रह० मालटा की चार साला जेल से रिहाई के बाद दारूल उलूम देवबंद तशरीफ़ लाये तो ओलमा के मजमे के सामने आपने एक अहम बात इर्शाद फ़रमाई–

जो लोग शैखुल हिन्द रह० वाक़िफ हैं वह इससे बेख़बर नहीं हैं कि उनकी यह क़ैद व बन्द आम सियासी लीडरों की कैद न थी। जंगे आज़ादी में इस फ़कीर की सारी मेहनत व कोशिश रज़ाये हक़ के लिए उम्मत की इस्लाह व कामयाबी के गिर्द घूमती थी। लागातर सफर और इन्तिहाई बेकसी के आलम में गिरफ्तारी के वक़्त वह जुमला जो उनकी ज़बान पर आया था, उनके हौसले और मक़सद का पता देता है। फ़रमाया–

जेल की तन्हाई में एक रोज़ बहुत उदास देख कर कुछ साथियों ने कुछ तसल्ली के शब्द कहना चाहे तेा फ़रमाया ''इस तकलीफ़ का क्या ग़म है जो एक दिन ख़त्म हो जाने वाली है ग़म उसका है कि यह तकलीफ़ और मेहनत अल्लाह के नज़दीक क़ुबूल है या नहीं।''

मालटा की क़ैद से वापस आने के बाद एक रात नमाज़े इशा के बाद दारूल उलूम में तशरीफ फ़रमा थे। उल्मा का बड़ा मजमा था। उस वक़्त फ़रमाया कि ''हम ने तो मालटा की ज़िन्दगी में दो सबक सीखे हैं।'' यह अल्फाज़

सुन कर सारा मजमा सन्नाटे में आ गया कि ओलमा के इस अजीम उस्ताद ने 80 साल ओलमा को दर्स देने के बाद आखिरी उम्र में जो सबक़ सीखे हैं वह क्या हैं, फ़रमाया कि :

''मैंने जहां तक जेल की तन्हाइयों में इस पर ग़ौर किया कि पूरी दुनिया में मुसलमान दीनी और दुनियावी हर हैसियत से क्यों तबाह व बर्बाद हो रहे हैं तो इसके दो सबब मालूम हुये। एक उनका क़ुरआन छोड़ देना, दूसरे उनके आपस के इख्तिलाफ़ और झगड़े। इसलिए मैं वहीं से यह अज़्म (संकल्प) ले कर आया हूँ कि अपनी बाक़ी ज़िन्दगी इस काम में लगाऊ कि क़ुरआने करीम को लफ़्ज़न (शब्दशः) और मआनन् (अर्थ सहित) आम किया जाये। बच्चों के लिए लफ़्ज़ी तालीम के पाठशाला हर बस्ती में क़ायम किये जायें। बड़ों को अ़वामी दर्से क़ुरआन की सूरत में उसके मायने व मतलब से वाकिफ कराया जाये और क़ुरआनी शिक्षाओं पर अमल के लिए उभारा जाये, और मुसलमानों के आपसी झगड़े व फ़साद को किसी क़ीमत पर सहन न किया जाये।''

नब्बाज़े उम्मत (उम्मत के मर्ज़ को समझने वाले) इस महान शख्सीयत ने मिल्लते मरहूम के मर्ज़ की जो पहचान और दवा बताई थी, बाक़ी ज़िन्दगी में कमज़ोरी व बीमारी और व्यवस्तताओं के बावजूद उसके लिए लगातार

अथक कोशिश की। खुद दर्से क़ुरआन शुरू कराया। जिसमें तमाम ओलमाये शहर और हज़रत मौलाना हुसैन अहमद मदनी, हज़रत मौलाना शब्बीर अहमद उसमानी, जैसे ओलमा भी शरीक होते थे और अवाम भी। इस नाकारा को इस दर्स में शामिल होने का शर्फ़ हासिल रहा है। मगर इस वाक़िये के बाद हज़रत रह० की उम्र ही गिनती के चंद दिन थे।

आँ क़दह बशिकस्त व–आँ साक़ी नमानद :–

आज भी मुसलमान जिन परेशानियों से ग्रस्त और जिन हादसों और मुसीबतों से घिरे हैं, अगर बसीरत से काम लिया जाये तो उनके सबसे बड़े सबब यही दो साबित होंगे। क़ुरआन को छोड़ना और आपस में लड़ना–झगड़ना। अगर ग़ौर किया जाये तो यह आपस की लड़ाई भी क़ुरआन छोड़ने ही का लाज़मी नतीजा है। क़ुरआन पर किसी दर्जे में भी अमल होता तो आपसी झगड़ा यहां तक न पहुँचता।

इख़्तिलाफ़े राय की सीमायें–

रायों का इख्तिलाफ़ कुछ ग़लत नहीं, अगर अपनी सीमाओं के अंदर हो। इंसान की फ़ितरत में उसके पैदा करने वाले ने हिक़मत के मुताबिक़ एक तत्व ग़ुस्सा और हिफाज़त का भी रखा है और वह इंसान को वजूद और तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी है। मगर यह तत्व दुश्मन से हिफ़ाज़त के लिए रखा है। अगर उसका रुख़ दूसरी तरफ़

हो जाये, उसके लिए दुश्मन को पहचानने में ग़लती हो गई हो या किसी दूसरी वजह से बहेरहाल जब दुश्मन का रुख़ बदलेगा तो यह ख़ुद अपनी तबाही का ज़रिया बनेगा। इसी लिए क़ुरआने करीम में मोमिन के लिए पूरी वज़ाहत के साथ इसका रुख़ निर्धारित कर दिया है।

''यक़ीनन शैतान तुम्हारा दुश्मन है उसको हमेशा दुश्मन समझते रहो'' जिसका हासिल यह है कि मोमिन के ग़ुस्से और लड़ाई का मैदान सिर्फ शैतान और शैतानी ताक़तें हैं। जब उसकी जंग का रूख़ इस तरफ होता है तो वह जंग क़ुरआन की भाषा में जिहाद कहलाती है जो महान इबादात में से है। हदीस में फ़रमाया है ''ज़रवतुस्सनाम अलजिहाद'' यानी इस्लाम में सबसे बुलन्द अमल जिहाद है। ''लेकिन अगर उस जंग का रूख़ ज़रा इस तरफ़ से हटा तो यह जिहाद के बजाये फ़साद कहलाती है जिससे बचाने के लिए अल्लाह के रसूल और किताबें आई हैं। रंग व रूप के ऐतबार से जिहाद और फ़साद में कोई फ़र्क नहीं होता। वह कांटा, जहां से यह लाइनें बदलती हैं सिर्फ यह है कि इसका रूख़ शैतान और शैतानी ताक़तों की तरफ़ है तो जिहाद वर्ना फ़साद। दो क़ौमी नज़रिया (Two nation theory) जिसने पाकिस्तान बनवाया, इसी इजमाल (संक्षेप) की अमली तफ़सील थी कि कलम-ए-इस्लाम के मानने वाले एक मुत्तहिद क़ौम हैं और न मानने वाले दूसरी क़ौम, इसलिए

उनके जिहाद का रूख़ उस तरफ़ होना चाहिए।

हज़रत शाह वलीउल्लाह रह० ने जिहाद के फर्ज़ होने की एक हिकमत यह भी बयान फ़रमाई कि ग़ुस्सा व ग़ज़ब और हिफाज़त का तत्व, जो इंसानी फितरत में रख दिया गया है जब जिहाद के ज़रिये अपना सही इस्तेमाल पा लेता है तो आपस के लड़ाई-झगड़े और फ़साद से ख़ुद बख़ुद मुक्ति मिल जाती है वर्ना उसकी मिसाल ऐसी होती है कि जिस छत में बारिश का पानी निकलने का रास्ता परनालों के ज़रिये न बनाया जाये तो फिर यह पानी छत को तोड़ कर अंदर आता है।

सुलह और जंग किस से ?

आज अगर ग़ौर किया जाये तो पूरी इस्लामी दुनिया पर यही बात सच्ची बैठती है। शैतान और शैतानी शिक्षाओं, कुफ्र व बेदीनी, खुदा और रसूल से बग़ावत, बेहयायी और बदकारी से तबीअ़तें आदी हो रही हैं। उनकी नफ़रत दिलों से निकल चुकी है इस पर किसी को ग़ुस्सा नहीं आता। इंसानी उदारता, नैतिकता, मुरव्वत और नर्मी का सारा ज़ोर कुफ़्र के समर्थन में सर्फ़ होता है। नफ़रत, बग़ावत और अदावत का मैदान खुद अपने जिस्म और अंगों की तरफ़ है। आपस में ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ाई-झगड़ा है, राई बराबर इख़्तिलाफ़ हो तो उसको बढ़ा कर पहाड़ बना दिया जाता है। अख़बारों और पत्रिकाओं

की ग़िज़ा यही बनकर रह गई। दोनों तरफ़ से अपनी पूरी क़ूव्वत व ताक़त इस तरह लगा दी जाती है मानो कि जिहाद हो रहा है। दो जंगी ताक़तें लड़ रही हैं और कोई ख़ुदा का बंदा अपनी तरफ़ नज़र करके नहीं देखता कि–

ज़ालिम जो बह रहा है वह तेरा ही घर न हो

मुल्की सियासत से लेकर ख़ानदानी और घरेलू मामलों तक हर जगह इसी का प्रदर्शन है। जहां देखो ''इन्नमल मोमिनूनल इखवा'' (बेशक मुसलमान आपस में भाई-भाई है) का सबक़ पढ़ने वाले आपस में गुत्थम-गुत्था हैं। क़ुरआन हकीम ने जहां माफ़ करने, दरगुज़र करने और नर्मी व सब्र की तलक़ीन की थी वहां जंग हो रही है और जिस महाज़ पर जिहाद की दावत दी थी वह महाज़ दुश्मनों के हमले के लिए खाली पड़ा है।

विधानसभाओं, विधान परिषदों, म्यूनिस्पल बोर्डों की बैठकों, हुकूमत के उहदों और नौकरियों की दौड़, कारोबार और व्यापार में मुक़ाबला और कम्प्टीशन, जायदादों और ज़मीनदारों का टकराव जहां सिर्फ़ अपने अधिकारों की जंग है जिसको छोड़ बैठना सबके नज़दीक क़ुर्बानी और आला अखलाक़ का सबूत है, वहां कोई एक इंच अपनी जगह से खिसकने को तैयार नहीं। दीन व मज़हब के नाम पर काम करने वालों की पहले तो तादाद ही कम है और जो है वह आमतौर से क़ुरआन व सुन्नत की बुनियादी शिक्षाओं से दूर

होकर जुज़्ची और फ़ुरूई (ग़ैर ज़रूरी) मसलों में उलझ कर रह गई है। छोटे से छोटा मसला भी झगड़ा व फ़साद का मर्कज़ बना हुआ है, जिसके पीछे गीबत, झूठ, दूसरों को तक़लीफ देना, एक दूसरे पर इल्ज़ाम और बुहतान, व्यंग और तंज़ जैसे गुनाह कबीरा की भी परवाह नहीं की जाती। दीन के नाम पर खुदा के घरों में झगड़ा व फ़साद औ लड़ाईयां हैं। नौबत पुलिस और अदालतों तक पहुँची हुई है।

इन दीनदारों को खुदा और रसूल का मज़ाक उड़ाने वालों, शराब पीने वालों, सूद और रिश्वत खाने वालों से इतनी नफ़रत नहीं, जितनी इन मसाइल में इख्तिलाफ़ रखने वालों से है।

कोई खुदा का बंदा इस पर नज़र नहीं डालता कि इस सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं में कोई भी किसी के नज़दीक ऐसा नहीं जिसके लिए मुसलमान से जंग करना जायज़ हो जिसके लिए दूसरों की ग़ीबत व बुहतान तराशी और ज़लील व रुसवा करना जायज हो।

इसलाहे हाल की एक ग़लत कोशिश :–

हमारे नये तालीम याफ़ता मुसलेहीन और सुधारकों की तवज्जो जब इस आपसी इख़्तिलाफ़ के भयानक नतीजे की तरफ़ हो जाती है और उसके इलाज की फ़िक्र होती है तो उनके ख्याल में सारी ख़राबियां सिर्फ़ इन इख़्तिलाफों में

नज़र आती हैं जो दीन व मज़हब के नाम पर सामने आते हैं। और वह सिर्फ़ इसी इख़्तिलाफ़ को मिटाने का इलाज सोचते हैं। वह इस वक़्त उन सब लड़ाईयों को भूल जाते हैं जो मात्र नफ़सानी और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए लड़ी जा रही हैं, जिनके लिए एक दूसरे की जान व माल और इज़्ज़त सब कुछ हलाल समझ लिया जाता है, जिसके पीछे पूरे मुल्क में आपसी नफ़रतों के सैलाब उमड़ते हैं। मगर उनको चूंकि नई तहज़ीब व शराफत का नाम दे दिया है इस लिए न वह क़ौम के लिए कोई मर्ज़ रहा न उसका इलाज सोचने की ज़रूरत रही। इख़्तिलाफ़ व लड़ाई में मुल्ला बदनाम हैं। इसी का इलाज ज़ेरे ग़ौर है। हालांकि दीन व मज़हब के नाम पर जो इख़्तिलाफ़ात हैं, अगर ग़ौर किया जाये तो उनकी ख़राबी सिर्फ़ अपनी सीमाओं को लांघ जाने की वजह से पैदा होती है, वर्ना वह कोई बिरादरी का न्योता नहीं बन सकते। वह अपने ज़ाती हुक़ूक़ नहीं जिन्हें क़ुर्बान किया जा सके। बल्कि क़ुरआन व सुन्नत की व्याख्याओं के इख़्तिलाफ़ात हैं जिनको ख़त्म नहीं किया जा सकता।

हमारे कुछ पढ़े लिखे मुस्लेहीन (सुधारकों) ने सारा फ़साद इख़्तिलाफ़ात में समझ कर उसका यह इलाज तजवीज़ किया किया कि फ़िरक़ावाराना इख़्तिलाफ़ात को हटा कर सबका एक नया मज़हब बना लिया जाये। पूरी क़ौम का वही एक मज़हब हो, ताकि इख़्तिलाफ़ की बुनियाद ही ख़त्म हो जाये।

मगर यह बात मज़हबी मसाइल में अकली तौर से सही है न अमली तौर से मुम्किन। हां ख़ालिस दुनयवी मामलों में जिनमें झगड़ा व्यक्तिगत अधिकारों ही का हो, वहां अपने-अपने मुतालबों और मांगों को नज़र अंदाज करके ऐसी सुलह की जा सकती है, इसलिए आपसी लड़ाई व झगड़े का इलाज यह नहीं कि इख़्तिलाफ़े राय को मिटाकर सबको एक सोच व नज़रिये का पाबंद कर दिया जाये।

इख़्तिलाफ़े राय और झगड़े-फ़साद में फ़र्क़ :-

अक़्ल व बसीरत रखने वालों से यह बात छुपी नहीं कि दीनी और दुनयवी दोनों तरह के मामलों में बहुत से मसले ऐसे आते हैं जिनमें रायें मुख्तलिफ़ हो सकती हैं। इनमें इख़्तिलाफ़ करना अक़्ल व ईमानदारी का तक़ाज़ा होता है। इनमें इत्तेफ़ाक़ सिर्फ़ दो तरह से हो सकता है या तो मजमे में कोई अक़्ल वाला और अहले राय न हो, एक ने कुछ कह दिया सब ने मान लिया, और या फिर जान बूझ कर किसी की रियायत व मुरव्वत से अपने ज़मीर और अपनी राय के खिलाफ़ दूसरे की बात पर हां कर दिया। वर्ना अगर अक़्ल व ईमानदारी दोनों मौजूद हों तो राय का इख्तिलाफ़ ज़रूरी है और यह इख़्तिलाफ़ कभी किसी हाल में नुकसानदेह भी नहीं होता। बल्कि दूसरों के लिए अक़्लमन्दी का सामान प्रदान करता है। एसम्बलियों में विरोधी दल को इसी बुनियाद पर ज़रूरी समझा जाता है।

क़ुरआन व सुन्नत के मुजमिलात (संक्षिप्ततों) और मुबहिमात (अस्पष्टतों) की तशरीह और व्याख्या में इसी तरह के इख़्तिलाफ़ को ''रहमत'' कहा गया है जो इस्लाम के दौरे अव्वल से सहाबा व ताबिईन और फिर इमामों में चले आये हैं। इन मसाइल में जो इख़्तिलाफ़ात सहाबा-ए कराम में पेश आ चुके हैं, उनको मिटाने के मायने इसके सिवा कुछ नहीं हो सकते कि सहाबा किराम की एक जमाअत को ग़लत और बातिल क़रार दिया जाये जो हदीस और इरशादाते क़ुरआनी के बिलकुल खिलाफ़ है इसी लिए हाफ़िज शम्सुद्दी ज़हबी ने फ़रमाया है कि जिस मसले में सहाबा किराम के दरमियान इख़्तिलाफ़ हो चुका है, उसको ख़त्म कर देना मुमकिन नहीं।

सहाबा और इमामों का तर्ज़े अ़मल :-

इसी के साथ सहाबा व ताबिईन और इमामों के दौर की वह तारीख भी सामने रखना ज़रूरी है कि किताब व सुन्नत की व्याख्या में जो इख़्तिलाफ़े राय पेश आया है, इस पूरी तारीख़ में एक वाक़िआ भी ऐसा नहीं कि उसने लड़ाई व झगड़े की सूरत इख़्तियार की हो। आपसी इख़्तिलाफ़ के बावजूद एक दूसरे के पीछे नमाज़ पढ़ना और भाईचारे और बिरादराना तअल्लुकात क़ायम रखना उस पूरी तारीख़ का आला नमूना है। सियासी मसायल में इख़्तिलाफ़े सहाबा का ''फ़ितना'' खुदाई हिकमतों के मातहेत पेश आया, आपस में

तलवारें भी चल गईं मगर ठीक उसी फ़ितने की शुरूआत में जब इमामे मज़लूम हज़रत उस्मान ग़नी रज़ि० बाग़ियों के नरग़े में घिरे हुये थे, और यही बाग़ी नमाज़ों में इमामत कराते थे, तो इमामे मज़लूम ने मुसलमानों को उनकी इमामत में नमाज़ पढ़ने की हिदायत फ़रमाई और आ़म क़ानून यह बना दिया कि–

''जब लोग कोई नेक काम करें उसमें उनके साथ सहयोग करो और जब कोई बुरा काम और ग़लत काम करे, तो उससे परहेज़ करो'' इस हिदायत के ज़रिये अपने जान पर खेल कर मुसलमानों को क़ुरआनी इरशाद–
''नेकी और तकवा के कामों में मदद करो और गुनाह और ज़्यादती में मदद न करो'' कि सही तफ़सीर बता दी और आपसी बिखराव और टकराव का दरवाज़ा बंद कर दिया।

और इसी फ़ितने के आख़िर में जब हज़रत अली और मुआ़विया रज़ि० अन्हुमा के दरमियान मैदाने जंग गर्म था, रूम की ईसाई सलतनत की ओर से मौक़ा पाकर हज़रत मुआ़विया रज़ि० को अपने साथ मिलाने और उनकी मदद करने का पैग़ाम मिला तो हज़रत मुआ़विया रज़ि० का जवाब यह था कि हमारे इख़्तिलाफ़ से धोखा न खाओ, अगर तुमने मुसलमानों की तरफ़ रूख़ किया तो अली के लशकर का पहला सिपाही, जो तुम्हारे मुक़ाबले के लिए निकलेगा वह मआ़विया होगा। मालूम यह हुआ कि आपसी

इख़्तिलाफ़ जो मुनाफिक़ों की गहरी साज़िशों से टकराव का रुख़ इख़्तियार कर चुका था, उसमें भी इस्लाम के बुनियादी हक़ीक़त किसी की नज़र से ओझल नहीं हुये।

खुलासा यह है कि किताब व सुन्नत की व्याख्या के तहत इख़्तिलाफ़े राय जो सहाबा, ताबईन और इमामों में रहा है तो वह बेशक रहमत ही है। उसका कोई पहलू न पहले मुसलमानों के लिए नुकसानदेह साबित हुआ और न आज हो सकता है बशर्ते कि वह उन्हीं सीमाओं के अंदर रहे, जिनमें उन हज़रात ने रखा था कि उनका असर नमाज़, जमाअ़त, इमामत ओर सामाजिकता के किसी मामले पर न पड़ता था।

लड़ाई–झगड़ा और इस्लाह :–

मज़हब के नाम पर दूसरे इख्तिलाफ़ात दौरे अव्वल के बाद बिदअ़त व सुन्नत और दूसरे नामों से पैदा हुये। बहुत से लोगों ने क़ुरआन व सुन्नत की व्याख्याओं में सही उसूलों को छोड़कर ज़ाती रायों को इमाम बना लिया और नये–नये मसाइल पैदा कर दिये। यह इख़्तिलाफ़ात बेशक वह फ़िरका बंदी थी, जिससे क़ुरआन व सुन्नत में मुसलमानों को डराया गया है। उनको ख़त्म या कम करने की कोशिश बिलाशुब्हा फ़ायदेमंद थी, मगर क़ुरआन हकीम ने उसका भी एक ख़ास तरीक़ा बता दिया है जिसके ज़रिये बिखराव की दीवार कम होती चली जाये, बढ़ने न पाये। यह

वह उसूले दावत इलल् ख़ैर है जिनमें सबसे पहले हिकमत व तदबीर से और फिर ख़ैर ख़्वाही व हमदर्दी और नर्मी से लोगों को क़ुरआन व सुन्नत के सही मफ़हूम की तरफ़ बुलाना है। और आखिर में ''मुजादला बिल्लतिहिया अहसन'' यानी हुज्जत व दलील के साथ समझे और समझाने की कोशिश है।

अफ़सोस है कि आज कल आम ओलमा और सुधारकों ने इन उसूल को नज़र अंदाज़ कर दिया है। सिर्फ़ बहस व मुबाहसे में और वह भी ग़ैर मशरूत अंदाज़ से व्यस्त हो गये कि अपने मुखालिफ़ का मज़ाक उड़ना उसको ज़लील करना और उसे नीचा दिखाने के लिए झूठे-सच्चे, जायज़-नाजायज़ हर तरह के हथकण्डे इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। जिसका लाज़मी नतीजा जंग व जिदाल और झगड़ा व फ़साद था।

इख़्तिलाफ़ात की ख़राबियों का वक्ती इलाज-

आज जबकि मुसलमानों का बिखराव चरम सीमा को पहुँचा हुआ है, लोग अपनी रायों और विचारों के ख़िलाफ़ किसी की बात मानने, बल्कि सुनने के लिए भी तैयार नहीं और कोई ऐसी क़ूव्वत नहीं कि किसी फ़रीक़ को मजबूर कर सके तो इस आपसी झगड़े व फ़साद और उसके भयानक प्रभाव से इस्लाम और मुसलमानों को बचाने का सिर्फ एक रास्ता है कि फ़िरकों और जमाअतों के ज़िम्मेदार

लोग ज़रा इस पर ग़ौर करें कि जिन मसाइल में हम झगड़ रहे हैं क्या वही इस्लाम के बुनियादी मसाइल हैं, जिनके लिए क़ुरआन नाज़िल हुआ और रसूले करीम सल्लाहु अलैहि वसल्लम भेजे गये। आप सल्ल० ने अपनी जिंदगी उनके लिए वक़्फ कर दी और उनके पीछे हर प्रकार की क़ुरबानियां दी। या बुनियादी मसाइल और क़ुरआन व सुन्नत की असली मांग कुछ और है ?

जिस मुल्क में एक तरफ़ ईसाई मिशनरियां अपनी पूरी क़ूव्वत व ताक़त और चमक-दमक के साथ इसको ईसाई मुल्क बनाने का सपना देख रही हैं। एक तरफ़ खुले तौर पर खुदा और रसूल और उनकी शिक्षाओं का मज़ाक उड़ाया जाता है, एक तरफ़ क़ुरआन और इस्लाम के नाम पर वह सब कुछ किया जा रहा है, जिसको मिटाने ही के लिए क़ुरआन और इस्लाम आये थे। इस जगह सिर्फ़ ग़ैर ज़रूरी मसायल और उनकी तहक़ीक़ व तनकीद व तबलीग़ की कोशिशों में उलझ कर उन बुनियादी कामों से ग़फ़लत बरतने वालों से अगर अल्लाह तआला व रसूले करीम सल्ल० की तरफ़ से यह मुतालिबा हो कि हमारे दीन पर यह आफ़तें आ रही थी, तुमने उसके लिए क्या किया ? तो हमारा क्या जवाब होगा ? मुझे यक़ीन है कि कोई फ़िरक़ा, कोई जमाअत जब ज़रा अपने झगड़ों से बुलन्द होकर सोचेगी तो उसको अपनी मौजूदा व्यवस्तताओं पर शर्मिन्दगी

होगी और उसकी कोशिश का रुख़ बदलेगा। उसके नतीजे में आपसी दूरी कम होगी।

मैं इस वक़्त किसी को यह नहीं कहता कि वह अपने ख्यालात और फिक्र को बदले, गुज़ारिश सिर्फ़ इतनी है कि अपनी क़ूव्वत सर्फ़ करने की सही जगह तलाश करके उस पर लगा दे, और आपसी इख्तिलाफ़ को सिर्फ़ हलक़ए-ए-दर्स या फ़तवा या तहक़ीक़ी रिसालों तक ही सीमित कर दे और उनमें भी अन्दाज़े गुफ्तगू क़ुरआनी उसूले दावत के मुताबिक़ नर्म रखे। जुमले बाज़ी और दूसरे की तौहीन करने को ज़हर समझें। हमारे अवामी जलसे, जुलूस, अख़बार बजाये आपसी झगड़ों को हवा देने के इस्लाम के बुनियादी और मुत्तफ़िक़ अलैह मसाइल पर लग जायें, तो फिर हमारी जंग, जो फ़साद की सूरत इख़्तियार कर चुकी है, दोबारा जिहाद में तब्दील हो जायेगी और इसके नतीजे में अ़वाम का रूख भी आपसी झगड़े-फ़साद से हट कर दीन की सही ख़िदमत की तरफ़ हो जायेगा।

सही और ग़लत तरीक़ेकार :-

बहुत से लोग फिक़्ही मसाइल में ओलमा के इख़्तिलाफ़ से परेशान होकर पूछा करते हैं कि हम किधर जायें, जिसकी तह में यह छुपा होता है कि अब हम किसी की न सुनें, सबसे आज़ाद होकर जो समझ में आये किया करें और बज़ाहिर उनका यह मअसूमाना सवाल दुरुस्त

मालूम होता है, लेकिन ज़रा ग़ौर फ़रमायें तो उनको इसका जवाब अपने ग़िर्द व पेश के मामलात में खुद ही मिल जायेगा।

एक साहब बीमार हुये। डाक्टरों या हकीमों की रायों में बीमारी और इलाज के बारे में इख़्तिलाफ़ हो गया तो वह क्या करते हैं ? यही ना कि उन डाक्टरों, हकीमों की डिग्रियां मालूम करके या फिर उनके दवाखाना में इलाज कराने वाले मरीज़ों से या दूसरे अनुभवी लोगों से पूछ कर अपने इलाज के लिये किसी एक डाक्टर को चुन लेते हैं। उसके मशविरे पर अमल करते हैं। मगर दूसरे डाक्टरों को बुरा भला कहते नहीं फिरते। यहां किसी का ख़्याल नहीं होता कि डाक्टरों में इख़्तिलाफ़ है तो सबको छोड़ो, अपनी आज़ाद राय से जो चाहो करो। क्या यही तर्ज़े अमल ओलमा के इख़्तिलाफ़ के वक़्त इख़्तियार नहीं कर सकते ?

एक मिसाल और लीजिए। आपको एक मुकदमा अ़दालत में दायर करना है। क़ानून जानने वाले वकीलों से सलाह लिया। इनमें इख़्तिलाफ़े राय हुआ तो कोई आदमी यह राय हीं देता कि मुक़दमा दायर करना ही छोड़ दो। या फिर किसी वकील की न सुने और खुद अपनी राय से जो समझ में आये वह करे। बल्कि होता यही है कि मुख़तलिफ़ तरीक़ों से हर इन्सान इतनी छानबीन कर लेता है कि उनमें कौन सा वकील अच्छा क़ानून जानने वाला और भरोसे के

लायक़ है उसको अपना बना लेता है और दूसरे वकील को बावजूदे इख़्तिलाफ़ के बावजूद दुश्मन नही समझता, बुरा भला नहीं कहता, उससे लड़ता नहीं फिरता।

यही फ़ितरी और आसान उसूल ओलमा के इख़्तिलाफ़ के वक़्त क्यों इख़्तियार नहीं किया जाता ? यहां एक बात यह भी सुन ली जाये कि बीमारी और मुक़दमे के मामलों में तो आपने किसी ग़लत डाक्टर या ग़ैर भरोसेमंद वकील पर ऐतमाद करके अपना मआमला उसके हवाले कर दिया तो उसका जो नुकसान पहुँचा है वह ज़रूर आपको पहुंचेगा। मगर ओलमा के इख़्तिलाफ़ में इस नुकसान का भी ख़तरा नहीं।

हदीस में है कि किसी शख्स ने अगर किसी आलिम से सवाल किया और उसने फ़तवा ग़लत दे दिया तो उसका गुनाह अमल करने वाले पर नहीं, बल्कि फ़तवा देने वाले पर है। शर्त यह है कि सवाल उस शख़्स से किया गया हो जिसका आलिम होना आपने ऐसी ही तहक़ीक़ व जुस्तजू के ज़रिये मालूम किया हो जो अच्छे डाक्टर और अच्छे वकील की तलाश में आप किया करते हैं। अपनी कोशिश भर सही आ़लिम की तलाश व जुस्तजू करके आपने उनके क़ौल पर अमल कर लिया तो आप अल्लाह के नज़दीक बरी हो गये। अगर उसने ग़लत भी बता दिया तो आप पर उसका कोई नुकसान या इल्ज़ाम नहीं। हां यह न होना चाहिए कि

डाक्टर की तलाश में तो उसका एम.बी.बी.एस. होना भी मालूम करें और यह भी कि उसके दवाखाना में किस तरह के मरीज़ ज्यादा शिफा पाते हैं, मगर आलिम की तलाश में सिर्फ़ अमामे, कुरते और दाढ़ी को या ज़्यादा से ज़्यादा जलसे में कुछ बोल लेने वाले को मेयार बना लें। अगर आपने ऐसा किया तो आप अपनी ज़िम्मेदारी से बरी नहीं। उसने जवाब में कोई ग़लती की तो आप भी उसके मुजरिम क़रार पायेंगे।

आपसी झगड़े व फ़साद के दो स्तम्भ :–

संक्षेप में यह है कि आज मज़हब के नाम पर जो झगड़े–फ़साद का बाज़ार गर्म है, उसके दो स्तम्भ हैं। एक हर फ़िरक़ा और जमाअत के ओलमा और दूसरे वह अवाम जो उनके पीछे चलने वाले हैं।

ओलमा अगर अपनी तहक़ीक़ व तनक़ीद में क़ुरआनी उसूले दावत के मुताबिक़ दूसरों की कमी निकालने और तौहीन करने से परहेज़ करने लगें और इस्लाम के वह बुनियादी मसाइल जिनमें किसी फ़िरक़े को इख्तिलाफ़ नहीं, और इस्लाम और मुसलमानों पर जो मुसीबतें आज आ रही हैं वह सब उन्हीं मसाइल से सम्बन्धित हैं, अपनी कोशिशों और मेहनतों का रूख उस तरफ़ फेर दें। इसी तरह अवाम अपनी ताक़त भर पूरी कोशिश करके किसी सही आलिम को इन्तिख़ाब करे और फिर उसके बताये तरीक़े पर चलते रहें।

दूसरे ओलमा या उनके मानने वालों से लड़ते न फिरें, तो बताइये कि इनमें मुश्किल क्या है ? सारे फ़िरक़े और उनके इख़्तिलाफ़ात कायम रहते हुये भी यह आपसी झगड़ा व फ़साद ख़त्म हो सकता है, जिसने आज मुसलमानों को किसी काम का नहीं छोड़ा, सिर्फ़ ज़रा सी तवज्जो देने और दिलाने और तरीक़ेकार बदले की ज़रूरत है। काश मेरी यह आवाज़ उन बुज़ुर्गो और दोस्तों तक पहुंचे जो इस राह में कुछ काम कर सकते हैं, और महज़ अल्लाह तआला और उसके रसूल सल्ल० के नाम पर इस हमदर्दाना दावत के लिए खड़े हो जायें तो उम्मत की बहुत सी मुश्किलें दूर हो जायें। और हमारा पूरा समाज जिन भयानक बुराइयों के गढ्ढे में जा चुका है उनसे निजात मिल जाये।

आम सियासी और शख़्सी झगड़ों का इलाज़ :–

जैसा कि पहले अर्ज़ किया जा चुका है कि मज़हबी मामलों में जिस व्यक्ति ने कोई खास रुख़ इख्तियार कर रखा है, वह उसी को अल्लाह तआला और उसे रसूल सल्ल० की तालीम व तलक़ीन समझ कर इख़्तियार किये हुये है, चाहे वह हक़ीक़त के ऐतबार से बिल्कुल ग़लत ही हो मगर उसकी सोच कम अज़ कम यही है कि वह अल्लाह का दीन है। इन हालात में उसको हमदर्दी और नर्मी से अपनी जगह समझने और समझाने की कोशिश तो बजाये खुद जारी रखना चाहिए लेकिन जब तक उसकी सोच व

नज़रिया न बदले उसको दावत नहीं दी जा सकती कि तुम क़ुर्बानी देकर अपना नज़रिया छोड़ दो और सुलह कर लो। उनसे तो सिर्फ़ यह कहा जा सकता है कि इख़्तिलाफ़े राय को अपनी सीमाओं के अंदर रखें और समझने व समझाने व क़ुरआनी उसूले हिकमत व नसीहत को नज़र अन्दाज न करें। मगर जिन मामलात का तअल्लुक़ सिर्फ़ ज़ाती और व्यक्तिगत अधिकारों और इच्छाओं से है वहां यह मामला आसान है कि झगड़े से बचने की ख़ातिर दूसरे के लिए अपनी जगह छोड़ दे, अपना हक़ छोड़ दे और जो व्यक्ति ऐसा करे दुनिया में भी उसकी इज़्ज़त को चार चाँद लग जाते हैं और जिस मक़सद को छोड़ा है, वह भी दूसरे तरीके से हासिल हो जाता है और आख़िरत में तो उसके लिए एक अज़ीम खुशखबरी है, जिसका बदला पूरी दुनिया और दुनिया की सारी हुकूमतें और सलतनतें भी नहीं हो सकतीं। रसूले अकरम सल्ल० ने फ़रमाया–

''मैं जमानत देता हूँ उस व्यक्ति को जन्नत में महल दिलाने का जिस ने हक़ पर होने के बावजूद झगड़ा छोड़ दिया है।''

मैं आख़िर में फिर अपने पहले जुमले की तरफ़ पलटता हूँ कि हमारी सारी ख़राबियों की बुनियाद क़ुरआन को छोड़ना और आपस में लड़ना है और यह आपस की लड़ाई दर हक़ीक़त क़ुरआनी शिक्षाओं से नावाक़िफ़ियत या

ग़फलत ही का नतीजा है गिरोही तास्सुब और पक्षपात ने यह हकीकतें नज़रों से ओझल कर रखा हैं।

दुनिया में नेक लोगों की अगर्चे कमी ज़रूर है मगर दुनिया नेक लोगों से खाली हो, ऐसा नहीं है। अफ़सोस है कि ऐसे मुस्लेहीन और सुधारकों की सख़्त कमी है जो अपने करीब के छोटे-छोटे दायरों से ज़रा सर निकाल कर बाहर देखें और क़ुरआन उनको किस तरफ़ बुला रहा है, उसकी आवाज़ सुनें।

अल्लाह हम सबको दीन के रास्ते पर चलने की तौफीक़े कामिल अ़ता फ़रमाये। (आमीन)